उस्ताद रजब अली खाँ

अमीक़ हनफ़ी

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत अकादेमी
के लिए
राजकमल प्रकाशन

□□

हमारे यहाँ संगीत के लिए सक्षम, संवेदनशील और सम्प्रेषणीय आलोचना भाषा अभी तक विकसित नहीं हो पायी है। संगीत और संगीतकारों पर गम्भीर विचारणीय सामग्री का बेहद अभाव है यद्यपि इधर बड़ी संख्या में संगीत के श्रोता बढ़े हैं जो समझ और जानकारी के साथ रसास्वादन करना चाहते हैं। इस सन्दर्भ में मध्यप्रदेश शासन द्वारा स्थापित और समर्थित तथा शास्त्रीय संगीत के विस्तार, प्रशिक्षण और अनुसन्धान के लिए सक्रिय उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत अकादेमी का यह प्रयत्न है कि शुरुआत के तौर पर मध्यप्रदेश के कुछ प्रमुख संगीतकारों और धाराओं पर विशिष्ट सामग्री तैयार और एकत्र की जाये और उसका सुरुचिपूर्ण प्रकाशन हो। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ का आत्मवृत्त, उस्ताद रजब अली खाँ पर लेखक और संगीतवेत्ता श्री अमीक़ हनफ़ी की पुस्तक, पण्डित कुमार गन्धर्व पर अनेक विशेषज्ञों के निबन्धों और उनसे लम्बी बातचीत आदि का सकलन, मध्यप्रदेश के कुछ संगीतकारों पर विशेषज्ञ श्री मोहन नाडकर्णी की पुस्तक और रायगढ़ के कथक पर पण्डित कार्तिक राम का लेखा-जोखा इस सीरीज़ के पहले-पहल प्रकाशन हैं।

अकादेमी के लिए ये पुस्तकें हिन्दी के सुप्रतिष्ठित राजकमल प्रकाशन, दिल्ली द्वारा प्रकाशित की जा रही हैं जिससे उन्हे व्यापक पुस्तक-ससार मे अपना स्थान बनाने में मदद मिल सकेगी।

अशोक वाजपेयी
संचालक
उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत अकादेमी
ललित कला भवन, रवीन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग
भोपाल-462003

इस जीवनी की सामग्री का बहुत बड़ा और अधिक महत्त्वपूर्ण हिस्सा तो मुझे उस्ताद रजब अली ख़ाँ साहब के सत्संग ही में प्राप्त हुआ। उस्ताद अमानत ख़ाँ और उस्ताद अमीर ख़ाँ साहब की बातचीत से भी काफ़ी सामग्री मिली। मामा साहब (श्री कृष्णराव मुजुमदार) ने भी बहुत-सी बातें बतायीं। श्री खण्डेराव गुणेकर, श्री बलवन्तराव घानविलकर, श्री ललिता शंकर पण्डित और श्री ठाकुर प्रतापसिंह से भी बहुत कुछ मालूम हुआ। श्री नरेन्द्र पण्डित ने ख़ाँ साहब पर छपे बहुत-से लेखों की कतरनों तथा पत्र-व्यवहार की फ़ाइल मुझे दे दी, जिससे मैंने लाभ उठाया।

प्रो. बी. आर देवधर, श्री वामनराव देशपाण्डे, उस्ताद अब्दुल हलीम जाफ़र ख़ाँ, उस्ताद नियाज़ एहमद-फ़ैयाज़ एहमद, श्री रमेश नाडकर्णी और श्री एम. आर. गौतम वगैरह से भी कुछ-न-कुछ प्राप्त हुआ।

मैं सहयोग और सहायता के लिए इन सबका आभारी हूँ।

अमीक़ हनफ़ी
लखनऊ

अभिनन्दन

रजब अली खाँ का संगीत अपने आयाम की दृष्टि से पौराणिकता रखता है, जितनी कि उनकी आँखें अधिकारपूर्ण और सशक्त हैं। अपने असाधारण आकर्षण के द्वारा दोनों ही आपको स्तब्ध किये रहने में सक्षम हैं। यहाँ है एक उस्ताद, अगर कहीं कोई उस्ताद कहलाने लायक कभी रहा हो, जिसकी मुद्राएं अत्यन्त भव्य और जिसके फिकरे एकदम शानदार हैं। जब वह गाता है तो ध्वनि-प्रवाह को स्वर-माधुर्य की ओर मोड़ता नहीं बल्कि हवा के कणाश्मों से संगीत की असामान्य आसंग और बिम्ब तराशता है जिनकी मांसपेशियाँ अपनी सबलता से और जिनका हरेक घुमाव और वक्र भंगिमाएँ अपने सुकुमार कटावों की परिपूर्णता से चमत्कृत कर देता है। वह पत्थर को मोम बना देने मे निपुण है और ईथर को उदात्त बना देने में माहिर। उसे सुनना धरती और आकाश को एक विशाल गीत की छवि से और किसी भीमकाय हृदय के तीव्र मनोवेग से नापने जैसा है।

संगीतकार के रूप मे रजब अली खाँ ने अपने आपको एक संस्था बना लिया है, यहाँ तक कि उन्होंने किससे सीखा और कहाँ सीखा जैसे प्रश्न अनावश्यक जान पड़ते हैं। जरूरत ही नहीं पड़ती कि उनकी कलात्मक वंशावलि को ढूंढा जाये। अलबत्ता अन्य उस्तादों के साथ उनके गुणों की तुलना करने को बरबस मन होता है। शैली और चीजों के भण्डार की दृष्टि से रजब अली खाँ पर अल्लादिया ख़ाँ का प्रभाव नजर आता है। मशहूर सारंगीनवाज हैदरबख्श के माध्यम से यह प्रभाव रजब अली ख़ाँ तक पहुँचा होगा, ऐसा निष्कर्ष केवल अटकल नहीं है क्योंकि हैदरबख्श कोल्हापुर में अल्लादिया के सम्पर्क में रहे थे और रजब अली खाँ भी कोल्हापुर दरबार से सम्बद्ध थे। लेकिन रजब अली ख़ाँ चौमुखी प्रतिभा रखते हैं। मगर आपको ऐसे अनुभव की जरूरत है जो असाधारण और असामान्य हो तो रजब अली ख़ाँ ही आपके कलाकार हैं। और कोई नहीं जिसे अछोभ रागिनियों का रहस्य मालूम हो, उतना जितना कोल्हापुर के इस बूढ़े राजगायक को मालूम है।

रजब अली ख़ाँ मूलतः ख़यालिये हैं। वे अपने संगीत कथानक के अमूर्त इरादों

को भरपूर और गूँजती हुई पूर्णता का रूप देने में दक्ष हैं। बिना गुलगपाड़ा, शोर-शराबा किये हुए भी निडर और पौरुषपूर्ण हैं। उनके चमत्कार भी महत्त्वपूर्ण हैं। फिरत करते हैं तो आपको अपने इरादे की सुनगुन भी नहीं देते और आपका अन्दाजा बुरी तरह निशाना चूक जाता है। जबकि उनकी तान रंजकता में जितनी संवेदनशील है ताल में उतनी ही पक्की है। कोई कल्पनात्मक प्रतिभा अपनी गर्म मिठास की इतनी रगारंगी न दिखा सकी। रूप और सुरीलेपन की सुन्दरता से इतना निकट सम्बन्ध किस कल्पना का रहा? पत्थर मूर्तिकार के सिद्धहस्त हथौड़े-छैनी से रूप धारण करता है और हर आघात एक पूर्णता का आभास दिलाता है और अपेक्षा जगाता है। उसके पीछे तकनीक से अधिक सशक्त मनोवृत्ति है और विद्या से अधिक स्थिर भावना है। रजब अली खाँ पहाड़ों को नहीं हिलाते, उन्हें खड़ा करते हैं। हल्के-फुल्के क्षणों ही में वे जलतरंग पर मेलोडी का पीछा करते हैं या बीन पर लय की सवारी करते हैं।

अस्सी से ऊपर के रजब अली खाँ वाक्पटु हैं और संस्मरणों का भण्डार रखते हैं। वे आदमियों की नब्ज़ पहचानते हैं लेकिन उन्हें व्याकुल नहीं करते, कम-से-कम अपनी बातों से तो कभी नहीं। यह काम उनका संगीत करता है और उनका पीला मगर असरदार चेहरा जिस पर है **एन्शन्ट मेरिनर** की-सी आँखें और लहरों की तरह रेखाओं से भरा माथा। हाजिरजवाबी में माहिर और व्यवहार-कुशल तथा विनम्र रजब अली ख़ाँ एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनसे मिलने को मन बाध्य होता है और जिसकी यादों को सीने से लगाये रखने को जी होता है। वे कला के लिए एक अक्षर क्षण हैं लेकिन जीवन के लिए मिथ्या-माया नहीं।

- आल इण्डिया रेडियो की कार्यक्रम पत्रिका
  इण्डियन लिसनर, दिल्ली, के
  18 दिसम्बर 1949 के अंक से उद्धृत

क्रम

उस्ताद रजब अली खाँ

पृष्ठभूमि

बचपन में कहीं कोई रस्म अदा होती तो ढोलक की थाप और औरतों के गाने की आवाज़ गूंजती। घर की बड़ी-बूढ़ियां कहतीं अमुक के घर छोरा हुआ है, डोमनियां गा रही हैं; या अमुक के यहां ब्याह-शादी हो रही है, मीरासनें बुलायी गयी हैं। अमीर खुसरो की पहेलियों (दो सुखनों) में पढ़ा है :

गोश्त क्यों न खाया
डोम क्यों न गया
उ.—गला न था

फिर और बड़े हुए तो अल्लामी अबुल फ़ज़ल की आईने अकबरी और इब्राहीम आदिलशाह के नौरसनामे के अनुवाद पढ़े। कलावन्त, कव्वाल, डोम, ढाडी, ढोली, नट, नटवे, सपेरे, भाण्ड, भाट, वंसौड़ आदि संगीतजीवी तथा आमोद-प्रमोद की व्यवसायी जातियों के बारे में पता लगा। खानदानी, कस्बी और अताइयों के दर्जे मालूम हुए। कुछ तो सर्वकालिक संगीतजीवी निकले और कुछ विश्रान्तिकालिक निकले।

मीरासी शब्द का अर्थ तो आनुवंशिक है। ऐसी संगीतजीवी जातियां जिन्होंने कालान्तर में धर्म-परिवर्तन कर लिया और मुसलमान हो गयीं, मीरासी कहलाने लगीं। पारिवारिक, वंशानुगत व्यवसाय और कौशल के रूप में संगीत की धरोहर जिसे मिली हो वह मीरासी ठहरा। जिसने शौकिया सुन-सुनकर गाना-बजाना सीख लिया वह अताई हुआ।

मीरासी दोस्तों से बातें होतीं तो वे या तो बड़े नौबत खां (ठाकुर मिस्री सिंह) के वसीले से मियां तानसेन से रिश्ता जोड़ते या किसी-न-किसी राजपूत गोत्र से या बूअलीसीना (मृ. 1198) को अपना अग्रज बताते। इसमें शक की गुंजाइश नहीं है कि मुसलमान संगीतजीवी जातियों में प्रायः सभी राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड, रूहेलखण्ड आदि से सम्बद्ध हैं। उनके जन्म-मरण, विवाह-मृत्यु आदि के संस्कार भी वंशानुगत हैं और धर्म-परिवर्तन ने कोई

प्रभाव इन सस्कारो पर नही डाला। वे अब भी एक ही गोत्र मे शादी नही करते।

भाटों और जगों के कथनानुसार युगों पहले संगीतजीवी जातियों में से बहुत से परिवार अन्न, जल, आश्रय और सत्कार की खोज में मेवात, मेवाड़, मारवाड़, हरियाणा से बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड, उमटवाड़ा (मालवा) के दूसरे अंचलो की ओर निकल आये। रियासत अलवर से भी ऐसा ही एक परिवार उमटवाड़ा (मालवा) की रियासत नरसिंहगढ़ मे आबाद हो गया। यह परिवार चिकानियां मीरासियों का था क्योंकि वे लोग अलवर राज्य के चिकानी ग्राम के थे। इन लोगों का गोत्र कालेट था, जो उनके अग्रजों के सपेरे होने की चुगली खा रहा है। ढोली, डोम, बंसोड़ और सपेरो का वशवृक्ष एक है। तान खां, पान खां, जान मुहम्मद, खान मुहम्मद, मीर खां, गुलाब खां, आदि के वंशज मुगल खां एक खयाल गायक थे। मुगल खां के पिता चुन्नू खां थे। मुनव्वर खां नामक एक और खयाल गायक की पुत्री हुसनीबाई से उनकी शादी हुई थी। मुनव्वर खां ग्वालियरके हद्दू-हस्सू खां की परम्परा में दीक्षित थे। उनके तीन बेटे भी थे। मगन खां, बबुले खां और यासीन खां। ग्वालियर नरेश महाराजा जयाजी राव सिन्धिया (1843-1886) की बेटी अर्थात् महाराज माधव राव (1886-1925) की बहिन राजकुमारी तारा राजे मगन खां और बबुले खां से संगीत सीखती थी। उनका विवाह देवास बड़ी पांती के महाराजा कृष्णाजी राव पवार (मृ. 1899) से हुआ तो उनके साथ ये गायक परिवार भी देवास चला आया। मुगल खां ने देवास ही में हुसनीबाई से शादी की। नरसिंहगढ में मुगल खां और हुसनीबाई को एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम रजब अली खां रखा गया। नरसिंहगढ़ की उमठ राजपूतो की रियासत पर उस वक्त राजा हनुमन्तसिंह का राज्य था। 1873 में उनकी मृत्यु हो गयी और राजा प्रतापसिंह, जो राजा हनुमन्तसिंह के पौत्र थे, गद्दीनशीन हुए। उनका देहावसान 1890 में हुआ।

उस जमाने के संगीतजीवी मुसलमान परिवार में जन्मे किसी व्यक्ति की जन्म-तिथि का निर्णय करना बड़ी जटिल समस्या है। फिर भी रजब अली खां साहब की जन्म-तिथि का निर्णय उतना कष्टसाध्य सिद्ध न हुआ।

खां साहब को अपने जन्म के बारे में कुछ पते की बातें याद थी। उन्हें विश्वास था कि उनका जन्म बृहस्पतिवार को हुआ था। उन्हें यह भी भलीभांति याद था कि उनके जन्म के दिन श्रीकृष्ण जन्माष्टमी मनायी जा रही थी। उनसे अक्सर सुना था कि देवास छोटी पांती के महाराजा मल्हार राव पंवार (मृ. 1934) उनसे दो-ढाई वर्ष छोटे थे। अतरौलीवाले उस्ताद अल्लादिया खां साहब को लगभग बीस वर्ष बड़ा और उस्ताद अब्दुल करीम खां को एक-दो वर्ष बड़ा कहा करते थे। इन सब बातों को आधार बनाकर मैंने 1864 से 1875 तक की एफीमरीज छान डाली। बृहस्पतिवार 3 सितम्बर 1874 को चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र में नज़र

आया और भाद्र मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी भी उसी दिन निकली। चूँकि खाँ साहब का नाम रजब अली खाँ था, इसलिए निश्चित था कि उनका जन्म हिज्री साल के सातवें महीने रजब का होना चाहिए। अन्यथा रजब अली खाँ नाम न होता। हिसाब लगाया तो रजब माह की बीसवी तारीख उस रोज की निकल आयी। अजीब संयोग है कि श्रीकृष्ण जन्माष्टमी और पैगम्बर हज़रत मुहम्मद की मअराज की रात 3 सितम्बर 1874 को एक साथ आयी और खाँ साहब का जन्म ऐसे अद्भुत संयोग का साक्षी था।

जन्माष्टमी को जन्म लेनेवालों मे संगीतज्ञों की संख्या अधिक है। बहरहाल यह निश्चित हुआ कि संगीत सम्राट उस्ताद रजब अली खाँ साहब नरसिंहगढ मे बृहस्पतिवार 3 सितम्बर 1874 ई. अर्थात् 20 रजब 1291 हिज्री तदनुसार भाद्रकृष्ण पक्ष तिथि अष्टमी 1931 विक्रमाब्द को पैदा हुए थे।

कोष्ठी प्रदीप नामक ज्योतिष ग्रन्थ में लिखा है :

नभस्यः मासे खलु जन्म यस्य,
धरो मनोज्ञश्च वरांगनानां।
रिपु प्रमाथी कुटिलोऽतिमर्म्मा,
प्रपन्न मर्त्य स भवेत् सहासः॥

[नभस्य मास अर्थात् भादों में जन्म लेनेवाला,
धीर प्रवृत्ति का, वरांगनाओं का मन जीतनेवाला,
अपने स्वामी के मन का मालिक, जिन्दादिल,
और अपने शत्रुओं का सहारक होता है।]

और इसी ग्रन्थ मे अष्टमी के जातक के बारे मे कहा गया है :

भूपालत. प्राप्तधनः कृशांग,
सुखी कृपालुर्युवति प्रियश्च।
चतुष्पदादयो धन धान्य युक्तः,
स्यादष्टमीजो मनुजः सुधीरः॥

[अष्टमी तिथि को जिसका जन्म हो ऐसा व्यक्ति सुधीर, राजाओं से धन प्राप्त करनेवाला, प्रसन्नचित्त, दयालु, युवतियों मे लोकप्रिय, चौपायों और धनधान्य का स्वामी होता है।]

इसके अतिरिक्त जन्मकाल मे चन्द्र और बृहस्पति का चन्द्र नक्षत्रों में, सूर्य तथा बुध का शुक्र नक्षत्रों मे और मंगल का बुध नक्षत्र मे अवस्थित होना विचारणीय है। 3 सितम्बर 1874 को ग्रह-स्थिति इस प्रकार थी :

सूर्य	पूर्व फाल्गुनी मे
चन्द्र	रोहिणी मे
मंगल	अश्लेषा में

बुध	पूर्व फाल्गुनी में
गुरु	हस्त में
शुक्र	उत्तर फाल्गुनी में
शनि	श्रवण में
राहु	अश्विनी में
केतु	स्वाति में

रोहिणी नक्षत्र का जन्म ही संगीतकार बनाने के लिए पर्याप्त है।

ख़ाँ साहब की जीवनचर्या, चरित्र और स्वभाव को देखते हुए तथा उनके जन्मकाल मे ग्रहनक्षत्रों की स्थिति के अनुसार अनुमान लगाया जा सकता है कि उनके जन्म के समय चन्द्र प्रथम भाव में तथा सूर्य चौथे भाव में रहा होगा। अर्थात् ख़ाँ साहब की लग्न और राशि एक होगी और वृष रही होगी तथा सूर्य सिंह मे चतुर्थ भाव में अवस्थित रहा होगा। यदि ऐसा रहा होगा तो उनका जन्म रात के दस बजे से अर्द्धरात्रि के बीच किसी समय का रहा होगा।

अनुमान से जन्मकुण्डली इस प्रकार सोच सकते हैं :

जातक की ग्रह-स्थिति के फल ज्योतिष-ग्रन्थो में निम्नानुसार दिये गये हैं :

चन्द्र : कल्पना-शक्ति प्रबल, भावुक, चिन्ताग्रस्त, आकर्षक मुखाकृति, अपने-आपमें मस्त, नूतन शैली, वाद्य सगीत मे रुचि, भोगी।

मंगल : प्रयोगधर्मी, सामाजिक सम्मान, अडिग निर्णय, सीमित साधन।

सूर्य : क्रोधी, चिड़चिडा स्वभाव, सन्तान जीवन में प्रगति नही कर पाती, पारिवारिक जीवन सुखविहीन, पुत्रों की संख्या कम।

बुध : राजदूत, विकासोन्मुख, मित्रों और शत्रुओं से समान रूप से प्रशंसा की प्राप्ति, धर्म-कर्म मे गहरी रुचि।

बृहस्पति : पुत्र-सुख से वंचित, डींग हाँकना, प्रदर्शन प्रिय, हठधर्मी, अधिकारियों का प्रिय, अपने-आपकी स्वच्छता, सुरम्यता, सजावट पर ध्यान।

शुक्र : कल्पनाशील, सृजनात्मक प्रवृत्तियाँ, काव्य-सगीत मे रुचि, रगीन मिजाज, राज्य से सम्मान प्राप्ति, वृद्धावस्था मे सन्तान सुख।

केतु : स्पष्टभाषी, कटुवचन, हठीला, धुन का पक्का, प्रसिद्ध तथा ख्याति प्राप्त।

शनि : चपल, भाग्य साथ नही देता, वाचाल, धैर्यशाली, मेहनती, मध्यावस्था में प्रसिद्ध, यात्राएँ अधिक। (खाँ साहब के जन्म मे शनि वक्री है)

राहु : शत्रु संहारक, प्रशंसकों की कमी नही, खर्च आमदनी से अधिक, आस्तिक, अपनी प्रतिष्ठा, सूझ-बूझ और हौसले के बल पर ज़िन्दा रहनेवाला।

एकादश भाव में मीन राशि का होना भी ख्याति तथा संगीत में प्रतिष्ठा दिलाने का कारण हो सकता है। विपरीत परिस्थितियों में प्रतिभा के प्रदर्शन का कारण भी यही हो सकता है। बारहवें घर में मेष राशि आदमी को फ़िज़ूल खर्च, ऐश-आराम-पसन्द, शौकीन और मनोरंजनप्रिय बना देती है।

इस दिलचस्प खेल में सम्मिलित करके आपको विश्वास दिलाना चाहा कि उस्ताद रजब अली खाँ साहब का जन्म बृहस्पतिवार 3 सितम्बर, 1874 को रात दस-ग्यारह बजे हुआ होगा। उनकी बातें, उनका स्वभाव, उनके आत्मीयों के बयानात और अनुमानित ग्रह-योग इस सिलसिले में हमारे पक्षधर हैं।

घरानेदारी

इससे पहले कि हम खाँ साहब के इतिवृत्त में गहरे पैठने की कोशिश करें, आसपास की कुछ जरूरी बातें कर डालें।

संगीत में भी गुरु की महिमा भक्ति-मार्ग और सूफी मत से कम नहीं है।

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपकी जो गोविन्द दियो बताय॥

मध्ययुगीन सामन्तवादी भारत के समाज और संस्कृति की कल्पना कीजिये। जन-सम्प्रेषण के बहुत ही सीमित साधन, वे भी बहुत विलम्बित तथा मन्दगति रखनेवाले। छापे की कोई व्यवस्था नहीं। ग्रन्थों का मिलना आसान नहीं। शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था अत्यन्त अल्प। संगीतजीवी जातियों में पढ़ने-लिखने का चलन और भी नहीं। संगीत का नाता ग्रन्थों से टूटकर, जनमानस, लोकपरम्परा, वंशानुगत परिपाटी से जुड़ा हुआ। विद्या से अधिक कला और कौशल बन गया है संगीत।

ऐसी अवस्था में गुरु का स्थान गोविन्द से बड़ा होना स्वाभाविक है।

यूँ भी संगीत में दक्षता प्राप्त करना ग्रन्थों की सहायता से दुरूह है। मध्ययुगीन संगीत में शास्त्रीय प्रभावों की दुर्बलता और तुरुष्क तथा ईरानी और लोकप्रिय प्रचलित संगीत के प्रभावों की सबलता स्पष्ट दिखायी देती है। मूर्च्छना पद्धति, जाति-गान, और प्रबन्ध-गान की क्लिष्ट बौद्धिकता और व्याकरणीयता की जगह रंजकता, भावना प्रधानता, स्वर-लय कौशल और कल्पनाशीलता का बोलबाला नजर आता है।

ऐसे में गले, जबड़े, हाथ, उँगलियों के कुशल प्रयोग और स्वर तथा ताल को साधने के गुर बतानेवाले उस्ताद की अधिक आवश्यकता थी। मध्ययुगीन स्वभाव के सर्वथा अनुकूल थी यह बात कि अपने हुनर और इल्म को आम न किया जाये और परम्परा सीना-ब सीना जारी रखी जाये। अपने पारिवारिक आत्मीयों और सक्षम तथा योग्य शिष्यों को ही तैयार किया जाये। खून का रिश्ता और गंडे (नाड़े या कलावे) का नाता ही किसी इल्म या हुनर तक पहुँचने का एकमात्र रास्ता

था। संगीत सम्राट उस्ताद अल्लादिया खाँ साहब की जीवनी में श्री गोविन्द राव टेंबे ने एक प्रसंग में लिखा है :

"महाराष्ट्र के आद्य और महान् गायक स्व. बालकृष्ण बुआ, स्व. भास्कर बुआ बखले, स्व. रामकृष्ण बुआ वझे आदि के बारे में हम जितना जानते हैं उसके आधार पर कहा जा सकता है कि छोटी उम्र में और कठिन परिस्थिति में गुरु सेवा करके इन लोगों ने गायन विद्या सीखी थी। उत्तर भारत में गायक-वादक लोगों के वंशानुगत घराने पहले से चले आ रहे थे। इन्हीं घरानों में से एक खाँ साहब का जन्म होने के कारण उन्हें गायन विद्या के लिए घर छोड़कर कहीं भटकते फिरने की जरूरत नहीं पड़ी। बाप, दादा, बाबा, मामा सभी पुश्तैनी गायक, जिससे चाहो जितना लो, फिर भी थोड़ा।"

भारतीय संगीत में घरानेदारी के वरदान और अभिशाप की बहस अब उतनी सामयिक नहीं रह गयी जितनी तीस-चालीस वर्ष पहले थी। फिर भी इस विवाद पर जरा ऊँची आवाज में सोच-विचार कर लिया जाये तो क्या बुरा है।

मुगल साम्राज्य की केन्द्रीय प्रभुता तथा शक्ति का विघटन सम्राट मुहम्मदशाह रँगीले (1719-1748) के बाद बहुत गतिशील हो गया। छोटी-मोटी रियासतों की इकाइयाँ धीरे-धीरे सामने आने लगीं। 1858 से बरतानिया के ताज की छत्र-छाया में ये राजा और नवाब भी आ गये और अब उन्हें सैनिक समस्याओं से फुर्सत मिल गयी। नाच, गाना, सुरा, सुन्दरी, अखाड़ेबाजी, आखेट, करतब, खेलकूद उनके ध्यान के केन्द्रबिन्दु बन गये। कुछ ने सच्ची लगन और आदर्शों को सामने रखकर इन सबको प्रोत्साहित किया और कुछ ने खेल, आमोद-प्रमोद और मनोरंजन समझकर इन्हें अपनाया।

जयपुर, जोधपुर, अलवर, रामपुर, लखनऊ, ग्वालियर, इन्दौर, देवास, रीवा, रायगढ़, बड़ोदा, कोल्हापुर, मैसूर, हैदराबाद आदि रियासतों में संगीत के दरबार होने लगे और संगीतकारों की बड़ी आवभगत होने लगी।

इन रियासतों में आश्रित कलाकारों ने अपनी वंशानुगत विद्या की सुरक्षा में ढील न आने दी। इस प्रकार लखनऊ के टप्पा खयाल घराने से ग्वालियर और जयपुर घराने का उद्भव हुआ और दिल्ली के खयाल बीन घराने से पंजाब किराना और भिण्डी बाजार का घराना निकल आया। इसी प्रकार आगरा और मेवाती घराना बन गया।

हर घराने के संस्थापक और उसके अनुचर बुजुर्गों का अनुकरण ही घरानेदारी है। श्रद्धा भक्ति की अतिशयता के कारण यह अनुचरण अन्धानुकरण बन गया। शास्त्र और ग्रन्थ का आधार तो था नहीं। कभी-कभी बहुत हास्यास्पद परिणाम निकले। गुरु की स्वाभाविक दुर्बलताओं और बीमारी या बुढ़ापे के कारण उत्पन्न वाणी दोष और मुद्रा दोष को भी श्रद्धालु शिष्यों ने प्रसाद मानकर अपना लिया।

मूर्च्छना पद्धति की जगह स्वर-मेल संस्थान या मकाम पद्धति प्रचलित हो गयी। भारतीय तथा तुर्क-ईरानी स्वरावलियों का समागम ऐतिहासिक अनिवार्यता थी इसलिए राग-रागिनियाँ सामने आयी किन्तु उनका कोई सुनिश्चित स्वरूप न बन सका। घरानेदारी ने यहाँ भी मतवैभिन्य दिखाया। उस्ताद अब्दुल करीम खाँ ने राग में वादी-संवादी के सिद्धान्त को मान्यता न दी। उनके लिए स्वर-संवाद बुनियादी महत्त्व रखता था। बहुत बड़ी तादाद में उस्तादों ने मिश्र रागों में आरोहावरोह की पूर्व-निर्धारित संगतियों को स्वीकार नहीं किया।

खयाल कल्पना की उन्मुक्त उड़ान का नाम है। एक वातावरण का नाम है। *राग का मण्डन करो, बढ़त करो, फिर विवादी लगाने और तिरोभाव करने का* कौशल दिखाओ। जब उस्ताद का दर्जा मिल जाये तो—

मैं चमन में चाहे जहाँ रहूँ मेरा हक है फ़स्ले बहार पर

शास्त्र, ग्रन्थ, सिद्धान्त आदि गुरु के वचन तथा कर्म से बड़े नहीं हो सकते। किताब, जबों, कणों और स्वर लगाने के दर्जों को क्या खाक बतायेगी? फिरत और गमक का अन्दाज कैसे सिखायेगी?

एक हद तक घरानेदार उस्तादों की दलील माननी पड़ेगी। लेकिन इस बात पर विचार करना भी आवश्यक है कि ग्रन्थों को हेय समझने और किताब से भयभीत रहने का एक कारण कहीं अवचेतन में व्यक्तिगत व्यावसायिक हित को पेश आ सकनेवाला सम्भावित खतरा तो न था।

जो भी हो उस्ताद रजब अली खाँ साहब के युग मे घरानेदारी एक वास्तविकता थी और संगीत परम्परा की सुरक्षा तथा प्रचलन में उसका महत्त्वपूर्ण योगदान था।

आज हमारे अभिजातवर्गीय विचारकों को मध्यकालीन सांस्कृतिक परिवर्तनों को ऐतिहासिक परिवेश में देखने की जरूरत महसूस नहीं होती। उपयोगिता-अनुपयोगिता का सिद्धान्त इतिहास मे भी क्रियाशील होता है। आक्रामक जातियाँ, राजनैतिक और सामरिक विजय प्राप्त कर लेती है किन्तु विजित जातियो की कलाएँ और संस्कृति उनके मन पर विजय पा लेती है। पिछड़े हुए अविकसित, दलित, नीच समझे जानेवाले लोग धर्म-परिवर्तन कर लेते हैं किन्तु उनके संस्कारों और रूढ़ियों मे कोई परिवर्तन नहीं होता। उनकी आनुवंशिक मान्यताएँ, आदतें, जीवन-शैलियाँ, कला-कौशल बहुत कम बदलते है। मध्य एशिया से भारत मे आनेवाली जातियाँ भी अपनी-अपनी आंचलिक संस्कृतियाँ और कला-शैलियाँ लेकर आयीं। इन सभी जातियो को इस्लामी या मुस्लिम संज्ञा या विशेषण के अन्तर्गत रखना वास्तविकता न होगी। हमारे मध्ययुगीन लेखक और विचारक उन्हें गान्धार, तुरुक, पठान आदि के नामो से पुकारकर हमसे अधिक वास्तविक होने का प्रमाण देते थे। अरब-कला संस्कृति में कौल, कल्बाना, तराना, नक़शोगुल कहीं नहीं मिलते। ये सभी मध्य एशियाई विधाएँ है जिनका भारतीयकरण हो चुका है।

खयाल

संगीत के परिश्रय स्थान सदा से मठ, मन्दिर, दरबार और वेश्यालय रहे है। सूफियों की खान्काहों मे कव्वाल गाते थे और उनकी शैली बहुत लोकप्रिय हो रही थी। नये के प्रति मनुष्य का आकर्षण सार्वभौमिक है। क़व्वालों की चौकियो मे धीरे-धीरे भारतीय जातियो के गायक-वादक भी शामिल होने लगे। मुल्तान, लाहौर, दिल्ली, आगरा आदि मे इस आदान-प्रदान से एक नयी संगीत-संस्कृति जन्म लेने लगी। पंजाब, सिन्ध, खड़ी बोली का क्षेत्र, व्रज मण्डल, अवध, भोजपुरी का क्षेत्र अपने-अपने प्रभाव कव्वालो पर डालने लगे। भारत में जो कव्वाली का रंग-ढंग बन गया है उसका उदाहरण मध्य एशिया में कही और नही मिलता।

अट्ठारहवी और उन्नीसवी सदियो मे प्रबन्ध, विष्णुपद और ध्रुपद गानेवाले कलावन्तों के मुकाबले में क़व्वाल बहुत खुलकर आ गये। इसी युग मे राजस्थान, जौनपुर, रुहेलखण्ड, बुन्देलखण्ड आदि मे खयाल प्रचलित था। यह एक प्रकार का गीतिनाट्य था और गज़ल गाने की शैली से प्रेरित था। इस खयाल में गीत अभिनय और नृत्य का समावेश होता था। यह खयाल लोक-संगीत की एक विधा थी।

जिस प्रकार व्रज और अवध के भजन गाने की शैली का लौकिक रूप ठुमरी बन गया, सिन्ध और पंजाब में काफी ने शास्त्रीय संगीत मे स्थान बना लिया। राजस्थान की माण्डें और हिमाचल तथा गढ़वाल की पहाड़ी धुनें अभिजातवर्गीय संगीत का अंश बन गयी, उसी प्रकार खयाल ने शास्त्रीय रूप धारण कर लिया। गज़ल, क़ौल तराना और लोक-संगीतों के मिलेजुले प्रभावों से संरचित खयाल कालान्तर में उत्तर भारतीय अभिजातवर्गीय संगीत की सबसे प्रिय विधा बन गया।

खयाल मे शब्दों के बजाय स्वरों का महत्त्व अधिक हो गया। स्थायी और अन्तरा की तीन-चार पंक्तियां रह गयी। स्वरो को कल्पनाशीलता के साथ सृजनात्मक रूप से बरतने का रिवाज हुआ। उन्मुक्त वातावरण का निर्माण करना कलाकार का धर्म ठहरा। लय से खिलवाड़ और गले तथा जबड़े की तैयारी को [illegible]

दृष्टि मिली।

खयाल शब्द अरबी का है, लेकिन फ़ारसी द्वारा गोद ले लिया गया। फ़ारसी मे खयाल से आशय उस काल्पनिक प्रतिबिम्ब से है जो पानी या दर्पण में दिखायी दे। *सोते या जागते मे जिस छवि की कल्पना की जाये वह भी खयाल है।* काले कपड़े से बनी हुई आकृति या वजूका, जिसे चिड़ियों को डराने के लिए खेत में खड़ा किया जाये वह, भी खयाल है। अनुपस्थित की उपस्थिति का आभास दिलानेवाली शक्ति का नाम ही खयाल है। खयाल का सम्बन्ध विचार से कम और एहसास से अधिक है। यह कल्पना और भावनाप्रधान शैली है। खयाल के पीछे रोमानी प्रवृत्तियाँ काम करती हैं।

टप्पा गायक मियाँ शोरी की परम्परा के दो गायक लखनऊ मे थे। शक्कर कव्वाल और मक्खन कव्वाल। दोनों जबरदस्त खयालिये थे। टप्पे की फिरत और बेचैनियाँ तो मशहूर हैं। शक्कर क़व्वाल ने खयाल को अधिक प्रभुत्वसम्पन्न और स्वतन्त्र बनाने की दृष्टि से ऐसी तालों में खयालों की रचना की जिसमे ध्रुपद नही गाये जा सकते। मियाँ सदारंग कलावन्त और तन्तकार थे। खयाल गाते थे लेकिन *ध्रुपद अंग से गाते थे और ध्रुपद की प्रभुता स्वीकार करते थे।* मुहम्मद करम इमाम ने—मअदनुल मूसीकी—मे एक हिकायत लिखी है कि रसूल खाँ ने कौल और खयाल गाकर सदारंग को शर्मिन्दा कर दिया था।

उदयवीर शास्त्री के एक लेख का उद्धरण राजस्थानी साहित्य का इतिहास मे डॉ. पुरुषोत्तम लाल मेनारिया ने दिया है:

> ऐसा कहा जाता है कि 18वी सदी के प्रारम्भ के आसपास ही आगरे के इर्दगिर्द एक नयी कविता-शैली प्रचलित हो चली थी, आगे चलकर जिसका नाम खयाल पड़ा। खयाल निश्चित ही उर्दू और फ़ारसी के मसाले से तैयार बीज था। आगरे में इन ख़यालों के कई दल थे, जिनमें सभी प्रकार के लोग थे और सभी प्रकार की बन्दिशें बाँधनेवालों के गोल कभी-कभी होड़ भी लगाने लगते थे।

मेनारिया ने विभिन्न राग-रागिनियो में गाये जानेवाले अनेक खयालों की रचना की और उनमे नृत्याभिनय आदि तत्त्वों के समावेश होने का उल्लेख भी किया है।

ठाकुर जयदेव सिंह ने आकाशवाणी द्वारा आयोजित एक विचारगोष्ठी मे एक शोधपत्र पढा था। शार्ङ्गदेव द्वारा वर्णित संगीत-रचनाओ के पाँच प्रकारों यथा, शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, वेसर और साधारणी को जाँच-परखकर खयाल की भारतीयता का ओर-छोर ढूँढने का पाण्डित्यपूर्ण प्रयास किया गया था। मेरी समझ मे नही आता कि खयाल जो सर्वथा भारतीय शैली है उसे विदेशी किसने कहा? इसलिए कि अमीर खुसरो या सुल्तान हुसैनशाह शर्की या सदारंग उनके प्रणेता हैं? ऊपर मे चाहे जितनी स्वच्छ नजर आये, यह मनोवृत्ति संकुचित और साम्प्रदायिक लगती

है। ठाकुर साहब, वल्लभाचार्य के पौत्र गोकुलनाथ-रचित 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में से उद्धरण देते हैं :

> और एक समय श्रीनाथ जी के भण्डार मे कुछ सामग्री चाहियत हुती। सो कृष्णदास गाड़ा तेकें आगरे को आये। सो आगरे के बाजार मे ऐनक वेश्या नृत्य करत हुती। खयाल टप्पा गावत हुती। और मीर हुती। सब लोग तमासों देखत हुते।

इस उद्धरण से ठाकुर साहब सोलहवी सदी में खयाल का अस्तित्व सिद्ध करते हैं। जौनपुर के शार्कियो का शासनकाल भी सोलहवी सदी ही तो है।

कलाओ और संस्कृतियो के इतिहास मे देशी, परदेशी, सधर्मी-विधर्मी, जातीय-विजातीय जैसी प्रवृत्तियां उस प्रकार संकुचित, सीमित, कुण्ठित और प्रतिबन्धित दायरे मे क्रियाशील नही रहती जैसा कि विशुद्धतावादी विचारक उन्हे समझते हैं।

मैं अपनी अन्य पुस्तक में क़ौल, कल्वाना, गज़ल, तराना और टप्पा गायकी तथा दिल्ली, मथुरा, आगरा, जौनपुर आदि के लोकसगीत से प्रेरित और प्रभावित खयाल गायकी का इतिहास लिख रहा हूँ। ख़याल शैली मे आवाज की बुलन्दी, उत्तराग की प्रधानता, मीड, मुरकी, खटका, कण, तहरीर, जमजमा आदि से अलंकरण और तेज़ी तथा तैयारी का चलन भारतीय मूल भूमि पर तुर्क-ईरानी संगीत की प्रेरणा तथा प्रोत्साहन के कारण कैसे हुआ इसका तफसील के साथ विश्लेषण करने का प्रयास करूँगा। इस बात में मुझे कोई शंका नही है कि ख़याल भारतीय है और भारत के बाहर कही प्रचलित नही।

कला-परम्परा और धरोहर

ग्वालियर में जब विष्णुपद और ध्रुपद पर काम हो रहा था तभी पन्द्रहवीं-सोलहवी सदी में जौनपुर में ख़याल को सँवारा जा रहा था। उसके बाद अट्ठारहवी सदी मे दिल्ली का मुगल दरबार सदारंग-अदारंग और रसूल ख़ां क़व्वाल आदि के ख़याल प्रयोगों को प्रोत्साहित कर रहा था। कलावन्तों के ख़यालों और कव्वालों के ख़यालो में बड़ा अन्तर था। क़व्वालों के रागों पर मध्य एशियाई और ईरानी मकामात का और टप्पा तराना गायकी का बहुत प्रभाव था।

शक्कर कव्वाल के लड़के थे बड़े मुहम्मद खां। उन्होंने खयाल गायकी मे गमक फिरत को एक साथ रखा। जमजमा और तहरीर को तैयार किया। रंगीले और कव्वाल घराने की शैलियों को समन्वित किया। एक जानदार, शानदार, सशक्त और सरस, कोमल, सुन्दर गायकी उभरी। ख़याल मे जमजमा और गिटकिरी, खटका और मुरकी का प्रयोग होता है। गमक के ये चारो प्रकार ध्रुपद में वर्ज्य हैं। रामप्यारे अग्निहोत्री ने रीवा राज्य का इतिहास में बड़े मुहम्मद खां के बारे में लिखा है।

"मुहम्मद खां तानसेन से कदापि कम न था। उसे रागिनियां सिद्ध थी।"

बड़े मुहम्मद खां साहब के बारे में एक दोहा भी मशहूर है :

मम्म द उतरे पार रागतानगा भार मे
रह गये ससुर गँवार बिनती के उपचार में।

बड़े मुहम्मद खां साहब ग्वालियर दरबार के आश्रित थे। महाराजा दौलत राव सिन्धिया (1794-1824) के शासनकाल में ग्वालियर दरबार मे उनका बड़ा मान था। मक्खन कव्वाल के दो पौत्र थे—हद्दू खां (मृ. 1875) हस्सू खां (मृ. 1859)—जिन्हे महाराजा ने बड़े मुहम्मद खां की नकल करने के लिए अपने तख़्त के नीचे छिपकर उनकी गायकी चुराने का अवसर दिया था। एक बार हस्सू खां ने बड़े मुहम्मद खां को उन्ही की गायकी सुनाकर रुष्ट और दुखी कर दिया। यद्यपि महाराजा की सिफारिश पर उन्होंने दोनो भाइयों को गण्डा बाँधकर विधि-

बत शागिर्द कर लिया किन्तु इस घटना का सदमा उन्हें बहुत रहा। वे ग्वालियर छोड़कर राजस्थान के किसी राज्य में चले गये। रीवा के महाराजा विश्वनाथ सिंहजू (1833-1855) की ससुराल वहाँ थी। रानी की सिफ़ारिश पर वे बड़े मुहम्मद खाँ साहब को अपने ससुर से माँग लाये। रीवा में खाँ साहब को 1200 रुपये मासिक वजीफ़ा, हाथी, पालकी, हवेली, पाँव में सोने का कड़ा पहनने की अनुमति आदि सम्मान प्राप्त थे। गाने के लिए भी कोई पाबन्दी नहीं थी। रजब अली खाँ साहब के पिता मुगल खाँ साहब रीवा ही में बड़े मुहम्मद खाँ साहब के शिष्य हो गये थे और उनसे ख़्यालगायकी की नयी शैली सीखते थे।

बड़े मुहम्मद खाँ साहब के बेटों के नाम थे—मुनव्वर अली, मुराद अली, कुतुब अली और मुबारक अली। मुबारक अली उनकी किसी रक्षिता के पुत्र थे। मगर बड़े मुहम्मद खाँ का दीपक उन्होंने ही रौशन रखा। मुनव्वर अली खाँ ने संगीत पर ध्यान नहीं दिया। उनके बेटे दिलावर अली खाँ और करम अली खाँ सितार और ध्रुपद में दीक्षित थे। दोनों भाई सितार इस तरह बजाते थे कि एक मिजराब का काम करता था और दूसरा पर्दों पर काम दिखाता था। रजब अली खाँ के एक भांजे नजीर दिलावर अली खाँ के शिष्य थे और दिलावर अली खाँ ने बाद में उन्हें दत्तक पुत्र बना लिया था।

बड़े मुहम्मद खाँ साहब का देहान्त रीवा में 1840 में हो गया।

मुबारक अली खाँ जयपुर में आवासित हो गये। महाराजा रामसिंह (1839-1880) का दरबार अपने जमाने में संगीत का बहुत बड़ा दरबार था। मुबारक अली खाँ, इनायत हुसैन खाँ सामझामिये के शिष्य अलीगढ़ के रजब अली खाँ बीनकार, इमरत सेन, घग्घे खुदाबख्श, हैदरबख्श और बहराम खाँ जैसे शीर्षस्थ कलाकारों का जमघट रहता था। बड़े मुहम्मद खाँ के देहान्त के बाद मुगल खाँ साहब ने जयपुर में मुबारक अली खाँ साहब का गण्डा बँधवा लिया। मुबारक अली खाँ साहब का स्वर्गवास जयपुर में 1880 में हो गया।

उस्ताद अल्लादिया खाँ ने उस युग की गायन त्रिमूर्ति तानसेन खाँ, मुबारक अली खाँ और हद्दू खाँ को जयपुर में एक साथ सुना था। अपने इस अविस्मरणीय अनुभव को उन्होंने गोविन्द राव टेंबे को सुनाया था।

"हद्दू खाँ की तान बिजली की कड़क और चमक रखती थी। तानसेन खाँ की तान बरछी के समान सीने के पार हो जाती थी और मुबारक अली खाँ की तान गतकाफरी की तरह गुंथाऊँ, चक्करदार, पेंचदार और कौशलयुक्त थी।"

इस बयान से अन्दाज लगाया जा सकता है कि वह जमाना ही तैयारी और तान पलटों की गायकी का था। अखाड़ेबाजी, शारीरिक करतब और बाजीगिरी का युग था। उस युग में तानबाज़ी से चमत्कृत करनेवाले गायकों को जर्नैल-कर्नैल की पदवियाँ दी जाती थीं। शेर जैसी आवाज़, खम्भे जैसी आवाज, पहाड़ जैसी

आवाज़, बिजली जैसी तान आदि संगीत की समीक्षात्मक तथा सौन्दर्यशास्त्रीय शब्दावली के विशेषण थे। किन्तु गायन का इल्म हासिल किये वगैर, उस्ताद से विधिवत सीखे बिना राग और तान दोनों अशुद्ध रहते थे। अल्लादिया खाँ साहब ने श्री टेंबे को हद्दू खाँ के बारे में बताया था।

"मुबारक अली खाँ के गाने में शास्त्रीय सौन्दर्य था, हद्दू खाँ का गाना केवल प्रचण्ड परिश्रम का द्योतक था।" राग उनके गाने में शुद्ध नहीं रह पाता था। ऐसी-ऐसी गुनियों की आपत्ति थी। बस, कमाये हुए गले के प्रभावशाली प्रयोग से ही उनका रंग जम जाता था। यही उनकी प्रसिद्धि थी जिसे उन्होंने अनथक मेहनत और सच्ची लगन से हासिल किया था। इसमें हद्दू खाँ साहब की कोई गलती नहीं थी। उन्होंने तख्त के नीचे छिपकर बड़े मुहम्मद खाँ का गाना सुनकर खुद को तैयार किया था।

प्रत्यक्ष विधिवत् तालीम कहाँ पायी थी कि कोई उनके तानों के वेग से बिगड़ते हुए राग की ओर संकेत करता…।

"उस ज़माने के बुज़ुर्ग कहते थे कि अपने पुराणों की मीड-घसीट गमक को शुद्ध रागदारी की गायकी छोड़कर सिर्फ़ तानबाज़ी पर अपनी गायकी का आधार हद्दू खाँ ने रखा था। वह भी बिलकुल सीधीसपाट तानबाज़ी पर। बड़े मुहम्मद खाँ की तान रागों के अनुरूप होती थी। लेकिन उनमें विलक्षणता, पेंचीदगी और गुथाव था। उनका किसी के गले में बैठना बिना गुरु के बताये सम्भव न था। हर राग में सीधी, सपाट, इकहरी तानबाज़ी के कारण राग के स्वरूप का बिगड़ना स्वाभाविक था।"

आचार्य बृहस्पति अपनी पुस्तक खुसरो तानसेन और अन्य कलाकार में लिखते हैं :

> "हद्दू खाँ की ख़याल गायकी पर ध्रुपद और होरी का प्रभाव था। किन्तु उन्होंने ग्वालियर नरेश दौलतराव सिन्धिया की आज्ञा से बड़े मुहम्मद खाँ का गाना सुना और उनकी शैली अपनायी। उसी युग में ग्वालियर की गायकी तानप्रधान हो गयी।"

हद्दू खाँ की गायकी पहले मीड घसीट गमकयुक्त थी या उस पर ध्रुपद होरी का प्रभाव था, यह बात ऐतिहासिक वास्तविकता प्रतीत नहीं होती। शक्कर और मक्खन दोनों रसूल खाँ क़व्वाल और गुलाम नबी शोरी के घराने के थे। गुलाम रसूल क़व्वाल के दोनों नवासे थे और दोनों ने मियाँ शोरी से सीखा था। एक कथन के अनुसार दोनों भाई थे। गुलाम रसूल की बेटी और मियाँ मौज के पुत्र थे। इसलिए संगीत की एक ही धरोहर दोनों के पास थी। बड़े मुहम्मद खाँ शक्कर क़व्वाल के पुत्र थे। और हद्दू खाँ, नत्थू खाँ, मक्खन के बेटे कादिर बख्श के पुत्र थे। तीनों भाइयों को निःसन्तान चाचा पीर बख्श ने तालीम दी थी। नत्थू खाँ को

तो पीर बख्श ने दत्तक पुत्र ही बना लिया था। इसलिए यह कहना कि बड़े मुहम्मद खां को सुन-सुनकर दोनों भाइयों ने अपना रास्ता बदल दिया था, पथभ्रष्ट हो गये थे, ठीक नहीं लगता। अलबत्ता विधिवत् इस नयी शैली की शिक्षा न मिलने के कारण राग का स्वरूप बिगड़ जाता था यह बात ध्यान देने योग्य है।

इन बातों से अन्दाज़ भी लगाया जा सकता है कि बड़े मुहम्मद खां साहब ने कठिन तपस्या और गहरी सूझ-बूझ के साथ ख़याल गायकी को एक नयी दिशा दे दी थी, जो कलावन्तों और कव्वालों की शैलियों से मिलकर तो उभरी थी मगर दोनों से विलक्षण थी।

आचार्य बृहस्पति ने खुसरो तानसेन और अन्य कलाकार में बड़े मुहम्मद खां के बारे में अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है (दरअसल आचार्यजी करम इमाम को उद्धृत कर रहे हैं) :

> "मुहम्मद खां ने दक्षिण में ख़याल का सिक्का जमा दिया था। वे दक्षिण ढंग से रहते थे। बालों का जूड़ा बांधते थे। तान, पल्टा, तहरीर और जमजमें का प्रयोग बहुत करारे ढंग से करते थे।"

मुबारक अली खां की गायकी के बारे में भी इसी पुस्तक में लिखा है :

> "पेचीदा फिरत में मुबारक अली खां अनुपम थे। इनकी तान की गुत्थियां अच्छे-अच्छे गायकों की समझ में नहीं आती थीं। प्रत्येक तान इस खूबसूरती से सम पर आती कि सुननेवाले चकित रह जाते।"

यह थी वह परम्परा और ऐसे थे वे मूल्य जो उस्ताद रजब अली खां के पिता मुगल खां साहब को प्राप्त हुए और उनकी अमूल्य धरोहर बन गये।

गण्डाबन्दी

नरसिंहगढ़ से मुगल खाँ का परिवार देवास चला आया। नरसिंहगढ़ में राजा प्रतापसिंह का राज्य था। रजब अली खाँ उस समय दस-ग्यारह साल के रहे होंगे। देवास बड़ी पाँती के महाराजा कृष्णाजी राव पवार ने बालक रजब अली खाँ का गाना सुना तो उनमें उन्हें अद्भुत प्रतिभा नज़र आयी। खुश होकर बालक के लिए रोज़ाना छटाँक-भर घी और दो पराँठे राजमहल से दिये जाने का आदेश उन्होंने दिया।

उस ज़माने में रजब अली खाँ के तीनों मामा, मगन खाँ, बबुले खाँ और यासीन खाँ भी देवास में थे। महाराजा ग्वालियर से नाराज़ होकर गणपत गवई भी देवास आ गये। उसी ज़माने मे जयपुर, ग्वालियर, इन्दौर होते हुए मशहूर बीनकार उस्ताद बन्दे अली खाँ भी देवास आ पहुँचे थे। देवास की एक गायिका चुन्नाबाई उनकी शिष्या हो गयी थी।

देवास मे सरदार गोपालराव दिघे छोटी पाँती के दरबार से सम्बद्ध थे। दिघे साहब का बाड़ा बहुत बड़ा और शानदार था। सरदार दिघे बड़े मुहम्मद खाँ साहब के शिष्य थे। उन्होंने बन्दे अली खाँ से सिफ़ारिश की कि वे रजब अली खाँ को अपने शिष्यत्व मे स्वीकार करें। और बन्दे अली खाँ साहब राजी हो गये। मुगल खाँ साहब ने अपने बेटे को उनके चरणों पर डाल दिया। और उस्ताद ने गण्डा बाँध दिया। यह घटना 1889 के लगभग घटी होगी। दिघे साहब ने रजब अली खाँ साहब की गण्डा-बँधवाई की खुशी मे देवास मे बहुत शानदार जलसा किया और जी खोलकर ख़र्च किया।

बन्दे अली खाँ साहब फकीराना तबीयत के आदमी थे। अपने-आपमे मस्त रहनेवाले। 1830 के लगभग पैदा हुए होंगे। अपने युग के बहुत प्रतिष्ठित तन्तकार थे। अब्दुल अज़ीज़ खाँ (विचित्र वीणा), इमदाद खाँ (विलायत खाँ के दादा), सितार (मुराद खाँ), (बीन) वहीद खाँ (बीन) और रजब अली खाँ (बीन, ख़याल) आदि युगप्रवर्तक संगीतज्ञ उनके शिष्य थे। बन्दे अली खाँ हद्दू खाँ के दामाद थे।

विलायत हुसेन खाँ ने संगीतज्ञों के संस्मरण में उन्हें गुलाम जाकिर खाँ का बेटा लिखा है। प्यारे लाल श्रीमाल ने मध्यप्रदेश के संगीतज्ञ मे दिल्ली के रहीम खाँ दाढ़ी का पुत्र बताया है और लिखा है कि सदारंग के बड़े प्रपौत्र निर्मल शाह से उन्होने बीन सीखी थी। आचार्य बृहस्पति ने खुसरो तानसेन और अन्य कलाकार मे अम्वेटे के बहराम खाँ (1777-1852) का शिष्य बताया है। जाकिरुद्दीन और अलाबन्दे के पिता के चचा थे बहराम खाँ। जाकिरुद्दीन और अलाबन्दे दोनों बन्देअली खाँ साहब के दामाद थे। भास्कर राव बखले के जिक्र में आचार्यजी ने बन्देअली खाँ साहब को आलाप और तराने के लिए विख्यात ठहराया है। वी. के. अग्रवाल ने ट्रैडिशन ऐण्ड ट्रेण्ड्स इन इण्डियन म्यूजिक में उनको गुलाम तका ख़ाँ के बेटे सादिकअली खाँ का पुत्र बताया है। बन्दे अली ख़ाँ ने हज़रत महबूबे इलाही ख्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह मे वर्षो तक बीन-वादन का अभ्यास किया था। उन्होंने फ़क़ीरी बाना धारण कर लिया था।

निज़ामहैदराबाद के साथ उनके दो लतीफ़े मशहूर हैं :

निजाम ने पूछा :

"तो आप ही बन्देअली हैं।"

"जी हुजूर, आप बन्देगाने आली है और ख़ाकसार बन्दे अली है।"

बीन सुनाने में ऐसे मस्त हुए कि बजाते-बजाते निज़ाम के उगालदान में पान की पीक डाल दी। उगालदान सोने का था और उस पर जवाहरात जड़े हुए थे। निजाम ने अपने ए. डी. सी. की ओर देखा और इशारा किया कि यह अब इन्हें ही दे दो। खाँ साहब का बीन-वादन समाप्त हुआ तो ए. डी. सी. ने कहा कि उगालदान आपको बख्श दिया गया है। ले जाइए। ख़ाँ साहब ने बहुत घृणा के साथ जवाब दिया "क्या खूब बन्दे अली को बन्देगान आली उगलदान के लायक समझ रहे हैं? मैं हरगिज न ले जाऊँगा! ए. डी. सी. ने समझाया कि पन्द्रह हजार से कम न होगा। "अरे भई, है तो उगालदान ही।" लोग क्या कहेंगे कि बन्दे अली खाँ हैदराबाद से बीन सुनाकर उगालदान लाया है।"

महाराज शिवाजी होल्कर (1886-1903) भी उनके शिष्य थे। बन्दे अली खाँ बहुत मूडी थे। वे सिखाते नही थे, उनसे सीखना पड़ता था। रजब अली खाँ उनके सबसे कम उम्र के शिष्य थे इसलिए विशेष कृपापात्र थे।

बन्देअली खाँ साहब ने बीन को गायन के बराबर ला खड़ा किया। उनकी शैली और बाज मालवा और विशेषत: इन्दौर में इतना प्रचलित हुआ कि 'मालवी बीन या इन्दौरी बीन के नाम से प्रसिद्ध हो गया। मुराद खाँ जावरावाले (रजब अली खाँ के फुफेरे भाई) और उनके शिष्य बाबू खाँ इन्दौरवाले (रजबअली ख़ाँ के मौसेरे भाई) आदि ने बीन के इस बाज को मालवे मे प्रतिष्ठित किया। रजब अली ख़ाँ भी अपने बीनकार होने पर गर्व करते थे। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत

पद्धति पर अपने आलेख में बी. एम. नाटेकर ने पूना गायन समाज को बताया। इस बैठक का विवरण मद्रास मेल नामक अंग्रेज़ी समाचार पत्र में 17 नवम्बर 1884 को छपा था :

"बीनवादन यद्यपि अब अपनी पुरानी स्थिति में नहीं है फिर भी किसी हद तक ऊपरी भारत के मुसलमानों में वर्तमान है। जहाँ तक मैं जानता हूँ, मैंने केवल एक वन्दे अली को देखा है जो आजकल हिज़ हायनेस महाराजा इन्दौर के यहाँ मुलाज़िम है।"

इस उद्धरण से दो बातें सिद्ध होती हैं। पहली यह कि भारत में बन्दे अली खाँ बीन के प्रमुख कलाकार थे और दूसरी यह कि 1884 में वे इन्दौर में थे।

1891 में बन्दे अली खाँ पुणे चले गये। चुन्नाबाई उनकी जीवन संगिनी बन गयी। रजब अली खाँ साहब के फुफेरे भाई मुराद खाँ (जावरेवाले) और वहीद खाँ (इन्दौरवाले) भी उनके साथ ही पुणे चले आये। रजब अली खाँ साहब ने देवास में जलतरंग और गाना सीख रखा था। वन्दे अली खाँ से उन्हें तन्तकारी के बहुत से रहस्य मिल गये।

घरानेदारी के अभिशापों में से एक यह भी था कि उस्ताद अपनी औलादों को अपनी कला के अधिकांश रहस्य सिखा देते थे। दामाद को आत्मनिर्भर बना देते थे ताकि उसे अपने भरण-पोषण के लिए किसी का मुँह न देखना पड़े और शागिर्द को गुज़ारे लायक़ बातों का इल्म दे देते थे। मगर शागिर्द की सेवा भाव व लगन और गुरुभक्ति से प्रेरित होकर उस्तादों ने औलादों और दामादों के बजाय अधिक सिखाया ऐसा उदाहरण भी कम नहीं।

बन्दे अली खाँ साहब का मूड आता तो दिन-रात सिखाते वरना हफ्तों तक सबक न होता। उनके बाज को मालवा में विशिष्ट स्थान मिला और बन्दे अली खाँ की बीन मालवे की बीन कहलायी। मुराद खाँ और उनके शिष्य बाबू खाँ ने इस बीन का बहुत प्रचार किया। रजब अली खाँ, जो मुराद खाँ साहब के ममेरे भाई थे और बाबू खाँ साहब के मौसेरे भाई थे अपने आपको बीनकार कहलाने में गर्व का अनुभव करते थे। उनके हवाले प्रो. बी. आर. देवधर ने थोरसंगीतकार में मुराद खाँ साहब के प्रसंग में लिखा है, रजब अली खाँ ने बताया :

"बीन की मिज़राब के 18 प्रकार हैं। 9 विलम्बित और मध्यलय के लिए और 9 द्रुत लय के लिए। हम मालवे के बीनकार सिर्फ़ विलम्बित और मध्य लय का काम करते है। रामपुर के बीनकार द्रुत की मिजराबें भी काम में लाते हैं। हम खयालिये बीनकार हैं और ये ध्रुपदिये बीनकार। वे लोग बीन पर ध्रुपद धमार की खटपट तेजी और तैयारी से दिखाना चाहते हैं। जबकि हम लोग मिठास और रंजकता पैदा करना चाहते हैं। उनका बाज क़ायदे कानून में जकड़ा हुआ है जबकि हमारा उन्मुक्त और भावपरक है। उनका बाज पखावज की द्रुतलय की गत परणों

पर आधारित है। हमारा उनका पुराना झगड़ा है। वे हमारी बीन को भोंडा बीन कहते हैं तो हम उनकी बीन को तांशा बीन कहते हैं।

लगता है बीन के बाज की अट्ठारह तकनीकों का जिक्र किया गया होगा। अस्थायी, अन्तरा संचारी, आभोगी, भोग, बराबर की जोड़, लड़ी जोड़, झाला, ठोक-झाला, कट्टझार, लड़ी, लड़गुथ, लड़लपेट, परन, साथ संगत, धुआ, मठ। पहली चार विलम्बित फिर तीन मध्य और शेष द्रुत में।

27 जुलाई, 1895 को पुणे में बन्दे अली खाँ का स्वर्गवास हो गया। चुन्नाबाई ने उनके शिष्यों की तालीम जारी रखने का निश्चय किया। रजब अली खाँ साहब के लिए तो वे माता तुल्य थीं। उनके रियाज़ के लिए उन्होंने बहुत कष्ट झेले और तंगी बर्दाश्त की। वे स्वयं किसी तरह घर का खर्च चलाती पर रजब अली खाँ की तालीम और रियाज पूरा होने के पहले कहीं गाने की इजाजत नहीं देती। उनका अनुशासन बड़ा कड़ा था। मगर रजब अली खाँ बच्चे तो थे नहीं कि घर का, माँ का हाल उनसे छिपा रहता। एक दिन किसी महफिल में गा आये और पचास रुपये नजराना ले आये। पचास रुपये उन्होंने चुन्नाबाई के चरणों में रख दिया। चुन्नाबाई ने रुपयों को छुआ भी नहीं और अवज्ञा से इतनी नाखुश हुईं कि खाना भी नहीं खाया। रजब अली खाँ को अपनी चिन्ता के विपरीत प्रभाव से बड़ा सदमा हुआ। उन्होंने चुन्नी माँ के पाँव छूकर कसम खाई कि तालीम पूरी किये बिना वे कहीं न गायेंगे, न बजायेंगे।

उस जमाने में वे पन्द्रह-बीस घण्टे रियाज करते थे। यह भी पता नहीं लगता था कि रात कब बीत गयी और दिन कब निकल आया।

कोल्हापुर और उस्ताद अल्लादिया खाँ

मुगल खाँ साहब सपरिवार कोल्हापुर आ चुके थे। यह बात 1892 के आसपास की होगी। कोल्हापुर मे नावाब दीवान सरदार बाला साहेब गायकवाड़ ने उन्हें आश्रय दिया। मुग़ल खाँ साहब वहाँ रम गये। 1986 में उस्ताद अल्लादिया खाँ अतरोलीवाले कोल्हापुर पहुँचे। उन्हे, छत्रपति साहू महाराज (1884-1922) ने राज-गायक बना लिया। दरअसल बात यह थी कि छत्रपति साहू महाराज के भाई बापूराव कागलकर की जागीर में उनकी प्रिय गायिका कृष्णाबाई रहती थी। उनकी बेटी थी तानीबाई। उसने ज़िद पकड रखी थी कि गाना सीखूंगी तो केवल अल्लादिया खाँ साहब से। कागलकर ने सोचा तानीबाई तो कोल्हापुर से जा नही सकती। अल्लादिया खाँ को बुलाने की तरकीब सोचना चाहिए। उन्होंने असल बात छिपाकर छत्रपति को अल्लादिया की ओर आकृष्ट किया। बम्बई मे सुनवा मे भी दिया। खाँ साहब को राजगायक बनाकर कोल्हापुर बुलवा लिया गया और कागलकर ने कृष्णाबाई की बात रख ली। खाँ साहब, तानीबाई को सिखाने लगे। गायकवाड के संरक्षण मे भी एक गायिका थी, नाम था दत्तीबाई। दत्तीबाई और तानीबाई एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा की भावना रखती थी। दत्तीबाई की तालीम का जिम्मा मुगल खाँ साहब ने पहले ही ले रखा था।

इसी दौरान मैसूर से गुलाबबाई नामक गायिका कोल्हापुर में आकर बस गयी। उनके साथ सारंगिये हैदरबख्श भी आये थे। हैदरबख्श छपरौली के रहने-वाले थे। बन्दे अली खाँ साहब के शिष्य थे और दूर के रिश्ते मे भतीजे भी लगते थे। अब्दुल करीम खाँ के साढ़ू थे और बेहरे वहीद खाँ साहब के मामूं और उस्ताद। हैदरबख्श से अल्लादिया खाँ की गाढी छनती थी और उनकी सगत में हैदरबख्श से संगीत की कई बातो का आदान-प्रदान भी होता था। किसी बात पर दोनों दोस्तों मे मन-मुटाव हो गया। हैदरबख्श ने अल्लादिया खाँ साहब से कहा :

"तुम किस बात पर नाज़ करते हो, मैं एक लड़के को ऐसा गवाऊँगा कि देखने रह जाओगे!"

इतना कहकर उन्होंने कोल्हापुर से पुणे में रजब अली खाँ को तार दिया :
"अगर खाने पर बैठा हो तो कोल्हापुर में आकर हाथ धोना"

रजब अली खाँ साहब कोल्हापुर आ गये। हैदरबख्श उनके साथ सारंगी पर संगत करते और अल्लादिया खाँ साहब की बातें भी सारंगी द्वारा निरुद्देश्य या सोद्देश्य आ जाती।

अल्लादिया खाँ साहब ने एक रोज छत्रपति से कह दिया कि मुगल खाँ साहब तो किसी सारंगिए के शिष्य हैं। यह बात अपमानजनक थी। रजब अली खाँ ने अपने पिता की वंशावली और सनदें नरसिंहगढ़, रीवा और जयपुर दरबारों से मँगव कर पेश की, कि वे पुश्तैनी गवैये थे और उस्ताद बड़े मुहम्मद खाँ तथा उस्ताद मुबारक अली खाँ के विधिवत् शिष्य थे। मगर अल्लादिया खाँ साहब के प्रति उनका दिल मैला हो गया और उन्होंने अल्लादिया खाँ साहब को गायन में अपना प्रमुख निशाना बना लिया।

अल्लादिया खाँ साहब का जन्म एक ध्रुपदिया घराने मे हुआ था जिसका प्रारम्भ मानतोल खाँ से हुआ। अल्लादिया खाँ साहब अतरौली के ख्व'जा अहमद के लड़के थे और अपने पिता के अलावा अपने चचा जहाँगीर खाँ से ध्रुपद—धमार होरी आदि सीखे थे। जयपुर में उन्होंने मुबारकअली खाँ साहब को सुना तो उनका मन विचलित हो गया। उन्हें मुबारक अली खाँ साहब की खयाल गायकी में अधिक नवीनता, ताजगी और आकर्षण नज़र आया। रोज उनके पास बैठते और उनका गाना सुनते तथा सुनते-सुनते बेहद प्रभावित हो जाते थे। उनके आकर्षण और लगन को देखकर मुबारक अली खाँ साहब ने कहा, "बेटा, शागिर्द क्यों नहीं हो जाते।" अल्लादिया खाँ ने घर में इच्छा प्रकट की कि वे मुबारकअली खाँ साहब से विधिवत गण्डा बँधवाकर सीखना चाहते हैं। जहाँगीर खाँ आदि ने कड़ा विरोध किया। हम लोग किसी मीरासी के शागिर्द कैसे हो सकते हैं, आखिर हम पठान हैं। मुबारक अली एक तो रक्षिता के लड़के हैं, फिर मीरासी है और फिर खयालिये हैं जब कि हम ध्रुपद गायक है। अल्लादिया का दिल टूट गया मगर उन्होंने मुबारक अली खाँ साहब के यहाँ उठना-बैठना नही छोड़ा। खाँ साहब भी ताड गये कि लड़के की लगन सच्ची है मगर घरवाले शागिर्द नही बनने दे रहे हैं। उन्होंने सुन-सुनकर और साथ रहकर सीखने पर कोई आपत्ति नही की।

अल्लादिया खाँ साहब की खयाल गायकी लखनऊ-ग्वालियर-जयपुर के उसी कव्वाल बच्चा घराने की गायकी थी जिसमें मुगल खाँ विधिवत दीक्षित थे।

अल्लादिया खाँ साहब अपने युग के श्रेष्ठ गायक थे। दक्षिण में उनकी तूती बोलती थी। किसी उभरते हुए संगीतज्ञ का उनसे प्रभावित न होना सम्भव न था। किन्तु अल्लादिया खाँ साहब के शिष्य वर्ग की ओर से यह कहा जाता रहा कि रजब अली खाँ ने छिप-छिपकर उनकी गायकी पी डाली। जो कुछ उन्होंने चोरी

छिपे हासिल किया उस पर मटके में मुँह डालकर रियाज़ किया। ये अतिशयोक्ति है और वास्तविकता से दूर।

1. अल्लादिया खाँ साहब रजब अली खाँ के पिता के गुरु मुबारकअली खाँ की गायकी गाते थे। यद्यपि वे उनके रिश्तेदार या शागिर्द नहीं थे।
2. नरसिंहगढ़ और देवास में मुगल खाँ साहब ने इस गायकी में अपने पुत्र रजबअली खाँ को किसी हद तक दीक्षित कर दिया था और कोल्हापुर में भी उनकी तालीम जारी थी।
3. रही-सही कसर हैदरबख्शजी ने पूरी कर दी। वे सारंगी के जरिये कव्वाल बच्चा घराने की गायकी के बलपेंच और तहरीर, ज़मज़मे और किराना गायकी की बारीकियाँ रजब अली खाँ साहब के गले में उतारते रहते थे।
4. अल्लादिया खाँ साहब दरबार और जलसों में गाते थे, उनका गायन गोपनीय न था।
5. अल्लादिया खाँ साहब से रंजिश और प्रतिस्पर्धा के कारण रजब अली खाँ उनसे आगे जाना चाहते थे और अपना विशिष्ट रंग पैदा करना चाहते थे। बिना उन्हें ध्यान से सुने उनके रंग से हटकर गाना कैसे सम्भव होता।

बहरहाल, कोल्हापुर मे काफ़ी नोक-झोक मे दिन गुजरते। दत्तीबाई को सिखाना, मुगल खाँ साहब और हैदरबख्शजी की निगरानी मे रियाज़ करना, बस यही काम थे।

रजब अली खाँ साहब, अल्लादिया खाँ साहब की बेहद तारीफ करते थे और बड़ी इज्ज़त से उनका ज़िक्र करते थे। वे कहते थे ऐसा ज़हीन और कस्बी गायक पैदा होना मुश्किल है। उनसे उन्हें यही शिकायत थी कि उन्होने मुगल खाँ साहब को सारंगिये का शिष्य क्यो कहा था। उस जमाने में किसी घरानेदार गायक या तन्तकार से गण्डा बँधवाये बिना गायन मे प्रतिष्ठा प्राप्त नही होती थी और सारंगिये का शिष्य होना गायक के लिए शान के खिलाफ था।

अली बख्श फतेह अली (1850-1920) के पिता काले खाँ सारंगिये थे। दोनों को बेहद तैयार किया गया था। लेकिन खानदानी गायक उन्हे मान्यता नही देते थे। आखिर एक रोज जयपुर मे दिल्ली घराने के मशहूर उस्ताद तानरस खाँ ने दोनों भाइयो की कलाइयो पर अपना गण्डा बाँध दिया। बस फिर तो दोनो भाई जर्नेल-कर्नेल हो गये और सारे हिन्दुस्तान मे धूम मचा दी। अलिया-फत्तू का नाम सारे भारत मे तानों के बादशाहो के रूप में फैल गया। ऐसी थी उस युग की संगीत संस्कृति और मीरासी समाज की मान्यताएँ।

अल्लादिया खाँ साहब भी रजबअली खाँ साहब की गायकी की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते थे। उन्होने अपने पुत्र मजी खाँ को वसीयत की थी कि "और किसी को सुनो या न सुनो, जिन्दगी मे एक बार रजब अली खाँ को जरूर सुनना। रजब

अली खाँ जैसा सुरीला, तैयार और जीवट गवैया दूसरा नहीं है। गानेवालों में वह तो एक हीरा है।"

लखनऊ म्युजिक कान्फ्रेंस में मंजी खाँ और रजब अली खाँ दोनों आमन्त्रित थे। मंजी खाँ को किसी ने चढ़ा दिया कि उन्हें रजब अली खाँ के बाद गाना चाहिए। मंजी खाँ, रजब अली खाँ से चौदह वर्ष छोटे थे। रजब अली खाँ को जब यह पता लगा तो उनकी तीवरी भी चढ़ गयी। उन्होंने कहा कि मंजी से कहो कि साथ बैठकर गा लें। तब कृष्णराव मजुमदार आदि बीच में पड़े। लगायी-बुझायी करनेवालों से दोनों का ध्यान हटाया। मंजी खाँ ठण्डे पड़े तो बोले, अच्छी बात है मैं ही पहले गाऊँगा। खाँ साहब का क्रोध भी शान्त हो गया। मंजी खाँ ने अपने जीवन का बेहतरीन और तैयार गाना गाया। रजब अली खाँ साहब ने सीने से लगा लिया।

"वाकई भई मंजी, आज तो तुमने अपने बाप की तस्वीर उतार दी।"

रजब अली खाँ साहब समाओं में आलाप कभी नहीं करते थे लेकिन मंजी खाँ की गर्मागर्म तेज तैयार तानों के बाद उन्होंने यह रणनीति अपनायी कि आधा घण्टा आलाप करके फिर मध्लय में ख़याल शुरू किया और पाँच छः मिनट बाद ही सट्टे की एक तान ली, फिर तान और फिर एक संकीर्ण स्थान से मुखड़ा पकड़कर सम पर आ गये। तानों का गुम्फन, अलंकारों का गुथाव, ऊपर नाना प्रकार की तिहाइयों की कड़ी लगा दी। मंजी खाँ मंच पर पहुँच गये और लिपट कर बोले :

> "भाई साहब। जैसा अब्बा ने कहा था आप उससे बढ़कर निकले। अगर मैं आपको न सुनता तो मेरी जिन्दगी में कमी रह जाती। सुव्हान अल्लाह आपका जवाब नहीं।"

कुछ लोग उस जमाने में अल्लादिया खाँ साहब को बड़ा बुजुर्ग मानते हैं। दोनों की उम्र में 19 वर्ष का ही तो अन्तर था। रजब अली खाँ 20 से 40 वर्ष की उम्र में वहाँ थे और अल्लादिया खाँ 40 से 60 वर्ष की उम्र में। रजब अली खाँ तो कहते थे कि बामन और गवैये को 60 के बाद सुनना चाहिए।

संगीत का सफ़र

कोल्हापुर मे अल्लादिया ख़ाँ साहब और रजब अली ख़ाँ साहब के तनाव से वातावरण अच्छा नहीं था। अल्लादिया ख़ाँ साहब ने छत्रपति से शिकायत शुरू कर दी। छत्रपति गुण ग्राहक थे। उन्हे जहाँ उस्ताद अल्लादिया ख़ाँ साहब की इज्जत का भास था वही वे उस्ताद मुगल ख़ाँ और उस्ताद हैदरबख्श का दिल भी नही दुखाना चाहते थे। उन्हे रजब अली ख़ाँ के रूप मे एक होनहार गायक की विकासशील प्रतिभा का खयाल भी था। उन्होने एक तरकीब निकाली जिससे साँप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। रजब अली ख़ाँ साहब को अपने पास बुलाया। खूब गाना सुना और कहा :

"अब तुम कुशल गायक हो चुके हो। अच्छे तन्तकार भी बन गये हो। हम चाहते है कि बाहर जाकर अपना और हमारी रियासत का नाम रोशन करो। बाहर जाकर नामवर उस्तादों को सुनो और सुनाओ। हम तुम्हारे प्रवास का प्रबन्ध किये देते हैं और अपने साथी नरेशों के नाम परिचय-पत्र दिये देते हैं।"

साहू महाराज ख़ाँ साहब को 'दक्खिन का बाघ' कहते थे।

रजब अली ख़ाँ साहब को भारत भ्रमण का यह अवसर अच्छा लगा और वे अपनी संगीत-यात्रा पर निकल पड़े।

रजब अली ख़ाँ साहब का स्वभाव पहले से ही तीखा, तेज़, गर्म और जंगजू था। वे केवल गाने-बजाने के कायल न थे बल्कि कुश्ती, लाठी, गतकाफरी के अखाड़ेबाज भी थे। ज़रा-सी बात पर हाथ छोड़ बैठना उनके लिए मामूली बात थी। इसलिए छत्रपति का परिचय-पत्र लेकर जब वे कोल्हापुर से निकले तो उन्होने केवल गानयुद्ध ही नहीं किये, वाक्युद्ध और मल्लयुद्ध भी कई जगह किये।

लड़ते-झगड़ते गाते-बजाते वे रामपुर पहुँचे। रामपुर सगीत का बहुत बड़ा केन्द्र था। वहाँ नवाब हामिद अली ख़ाँ (1889-1930) राज कर रहे थे और उन्होने अपने दरबार मे विख्यात उस्तादो को एकत्र कर रखा था। नवाब साहब के इल्म की, याददाश्त की, राग, लय, ताल की जानकारी की और गुनिजनों को

आश्रय देने की तारीफ़ स्वयं मैंने कई बार खाँ साहब से सुनी है। उनके शागिर्द बनाने के शौक की चर्चा भी बहुत सुनी है। पं. विष्णु नारायण भातखण्डे भी उनके शिष्य थे। बहुत से कलाकारों ने उनका गण्डा बंधवा रखा था। सदारंगजी के वंशज सेनिया घराने के उस्ताद वज़ीर खाँ नवाब साहब के गुरु थे और उनकी मर्जी के ख़िलाफ़ रामपुर में संगीत के विषय में कुछ नहीं हो सकता था। अज़ीम खाँ साहब (तबला और सरोद नवाज़, जावरावाले) खलीफा नत्यू खाँ (दिल्ली), एहमदजान थिरकवा, मुश्ताक हुसैन खाँ, अयोध्या प्रसाद आदि रामपुर दरबार के आश्रित ही तो थे।

नवाब साहब से किसी संगीतज्ञ का मिलना उस समय तक नामुमकिन था जब तक उस्ताद वज़ीर खाँ सिफारिश न करें। स्व. कृ. गं. कव्वाले ने इस यात्रा का विवरण अपने एक मराठी लेख में इस प्रकार लिखा है :

महल मे प्रवेश मिलना आसान नही था। खाँ साहब (रजब अली खाँ) सड़क पर घण्टों टहलते रहे। चोबदार अन्दर जाने का मौका ही नही दे रहा था। सौभाग्य से एक गवैये से मुलाक़ात हो गयी। गवैये ने कहा, मैं तुम्हें महल के अन्दर तो पहुँचा सकता हूँ मगर यहाँ के रिवाज के मुताबिक तुम्हें उस्ताद वज़ीर खाँ को झुककर फ़र्शी सलाम (मुजरा) करना होगा। और उनकी उस्तादी और बुजुर्गी का ख़याल रखते हुए अदब के साथ बातचीत करना होगा। खाँ साहब ने कहा, कुछ परवाह नही आप अन्दर तो ले चलें। मिज़ाज पहले ही उग्र और तेज़ था, गवैये की बातो ने तन-बदन में आग लगा दी। गुस्से को पीते हुए उन्होंने उस वक्त की माँग के अनुसार शान्ति से काम लिया। महल के अन्दर पहुँचकर रामपुरी गवैये ने फ़र्श छूकर उस्ताद वज़ीर खाँ को कोनिश की और दरबार का आश्रित होने के कारण चुपचाप हाथ जोड़कर ज़मीन पर बैठ गया। खाँ साहब महल में दाखिल हो चुके थे, उन्होने सादा सलाम किया और ख़ाली कुर्सी पर जाकर बैठ गये। वहाँ दो ही कुर्सियाँ थी, दोनो पर चाँदी चढ़ी हुई थी। पास ही हुक्का रखा था। उसकी नय लेकर दो बार कश लिये। यह देखकर वज़ीर खाँ को अन्दर-ही-अन्दर बहुत गुस्सा आया मगर चुपचाप रहना उचित समझा। बातचीत शुरू की :

"आपकी तारीफ ?"

"खाकसार उस्ताद बन्दे अली खाँ साहब का शागिर्द है।"

"अच्छा अच्छा वही जो भोंडा बीन बजाते थे ! इन्दौरी भोंडा बीन !"

"मगर वह इन्दौरी बीन आपकी, रामपुरी ताशबीन से बदरजहा बेहतर है।"

पहली मुलाकात का यह आलम। उस्ताद वज़ीर खाँ से ऐसी उठा-पटक हो जाने के बाद नवाब साहब से मुलाकात का सवाल ही न था। मगर बात बहुत बिगड़े इसके पहले खाँ साहब ने वज़ीर खाँ साहब के हाथ में तानपूरे का पद

थमा दिया। अब वजीर खाँ साहब असहाय नज़र आ रहे थे। नवाब साहब से बिना शर्त मुलाकात करा दी। उस रात नवाब साहब का गाना था। उसमें रजब अली खाँ भी बतौर मेहमान के मौजूद थे। नवाब साहब हालाँकि कस्वी, लयकार और ध्रुवपद धमार मे प्रवीण थे मगर स्वर की ओर उनका ध्यान कम था। घण्टा-सवा घण्टा गाने के बाद आदत के मुताबिक उन्होने महफिल पर नज़र डाली और पूछा :

"कलावन्तो ! सच-सच बताओ, क्या तुमने मुझ-सा एकाध भी लयकार और सुरीला गायक कही देखा है ?" सवाल सुनना था कि सारी सभा एक स्वर मे बोल उठी :

"नही, कभी नही, कभी नही···हुज़ूर जैसा लयकार और सुरीला गायक हमने दूसरा नही देखा।"

इतने में नवाब साहब की निगाह नौजवान गायक रजब अली खाँ पर पड़ी और फिर सवाल उनसे भी कर बैठे। खाँ साहब की जगह कोई और होता तो जी-हुज़ूरी में ज़मीन-आसमान एक कर देता, मगर खाँ साहब पहले ही टेढे आदमी ठहरे। सोच-समझकर जवाब दिया :

"सरकार, मैंने हिन्दुस्तान के कई राज-दरबार देखे हैं मगर उनमे से किसी मे गायन कला के जानकारों की इतनी संख्या नही देखी जितनी आपके दरबार मे है और देशी नरेशो मे आप जैसा गायक नरेश भी नही देखा।"

नवाब साहब ने फिर पूछा :

"न तो मैं राज दरबार के बारे में पूछ रहा हूँ और न राजाओं के गाने-बजाने के बारे में। मैं तो तुमसे सिर्फ इतना जानना चाहता हूँ कि गवैयों मे गायक की हैसियत से मेरा क्या दर्जा है।" अब तो स्पष्ट बोलना अनिवार्य हो गया।

"आप सुनना ही चाहते है तो मैं अर्ज करता हूँ कि गवैयो के बच्चे भी हुज़ूर से अच्छा गा लेते हैं। सरकार ज़रा स्वर पै ध्यान दें। स्वर गया तो सर गया, ताल गया तो बाल।"

नवाब साहब को इतना सुनकर गुस्सा तो बहुत आया और दाँत पीसकर होठ *चबाते हुए बोले :*

"मियाँ, साहू महाराज का पत्र लेकर आये हो, इसलिए बख्श रहा हूँ वरना इस बेअदबी की सज़ा तो गोली मारकर देनी चाहिए।" इतना कहकर वजीर खाँ की तरफ देखकर कहा :

"इन्हे फौरन तीन सौ रुपये देकर रुख़सत कीजिये।"

यह घटना 1909-10 की होगी। देखा आपने। कैसा स्वभाव था—उग्र, गुस्सैला, तेज़, मुँहफट, स्वाभिमानी, तीखा और खरा। मगर गुस्से की हालत मे भी दूध को दूध और पानी को पानी ही कहते थे।

व्यक्ति और कलाकार

1911-12 मे रजब अली खाँ साहब देवास लौट आये। खाँ साहब के एक छोटे भाई और थे। उनका नाम यूसुफ खाँ था। उनके बड़े लाड़ले थे। छोटे भाई को खाँ साहब ने बहुत तैयार किया था, उनसे बडी उम्मीदें बांधी थी, मगर दुर्भाग्यवश भरी जवानी में उनका देहान्त हो गया। खाँ साहब के परम सखा देवास छोटी पांती के महाराजा मल्हार राव बाबा साहेब पवार (1892-1934, जन्म 1877) थे जो उनके शिष्य भी हो गये थे।

खाँ साहब की शादी जावरा के पुलिस इंस्पेक्टर शाहमीर की बेटी सायराबाई से हुई थी किन्तु वे नि.सन्तान ही चल बसी।

मल्हार राव महाराज के साथ खाँ साहब भी नाथ योगी शीलनाथ महाराज के शिष्य और भक्त हो गये थे, उनकी धूनी पर बैठकर सैकड़ों भजन उन्होने सुनाये थे। कबीर के पदों के वे विशेष रसिया थे। शीलनाथ महाराज से खाँ साहब ने नाद-साधना, योग, ओंकार-साधना आदि की दीक्षा पायी थी। गीता का ग्यारहवाँ अध्याय उन्हे कण्ठस्थ था। उन्होने क़िरअत भी सीखी थी और जब कुरान शरीफ की तिलावत करते तो सुननेवाले का मन आर्द्र हो जाता। वे किसी धर्म के कट्टर अनुयायी नही थे। स्वर ही उनका साध्य और आराध्य था। दैवी शक्तियो और अध्यात्म पर उनकी पूरी आस्था थी। वे लोक धर्म को मानते थे। शिवोत्सव, गणेशोत्सव, शारदोत्सव आदि मे खुल कर सम्मिलित होते और मुहर्रम के दिनो मे ताजिया बनवाते और सोजख्वानी करते।

उनके कच्चे घर में एक कोठरी अलग थी। उसे हुसैन कोठरी कहते थे। उस कोठरी मे वे आधी रात में घुस जाते और फिर वहाँ क्या होता किसी को पता नहीं था। इस खोली मे उनके घर के लोग भी नही जा सकते थे। वहाँ वे व्यक्तिगत आराधना व साधना करते। शीर्षासन, ओंकार साधना, प्राणायाम आदि।

देवास में मेजर शिवप्रसाद से उनकी आत्मीयता और अभिन्न सम्बन्ध थे। मेजर साहब उनके शिष्य थे और गुरुभक्ति मे सबसे आगे थे। मेजर साहब ने खाँ

साहब को किसी बात की तंगी महसूस न होने दी। उनके उग्र व क्रोधी स्वभाव को सहन करते हुए आजीवन तन, मन, धन से उनकी सेवा करते रहे। मेजर साहब का घर, उनकी मोटरकार, उनका सिनेमा, उनकी जेब सबकुछ खां साहब पर न्यौछावर था। उन्ही के मकान पर कृष्णराव मजुमदार और कृष्णशकर शुक्ल, खां साहब के शिष्य हुए और वहां उनके गाने बजाने की तालीम हुई। नरसिंहगढ़, इन्दौर, पुणे, कोल्हापुर, रामपुर आदि की यात्राओ के अलावा रजब अली खां साहब नेपाल दरबार के आमन्त्रण पर नेपाल की यात्रा पर गये। मिरज, सांगली, बम्बई, जयपुर, उदयपुर, अलवर, रीवा, ग्वालियर, धार, रायगढ, बड़वानी, लखनऊ, रतलाम, जावरा, दरभंगा, झांसी, इलाहाबाद, दिल्ली, कलकत्ता, लाहौर, करांची, नागपुर, हैदराबाद, मैसूर आदि स्थानों पर उनकी अद्‌भुत कला की भूरि-भूरि प्रशंसा रसिको और गुनिजनों ने की।

1909 मे मैसूर यात्रा के दौरान उन्होंने वहां के गुनियों को अपनी इन्दौरी बीन का रंग दिखाकर मोहित किया और स्वयं महाराजा कृष्णराव वाडियार (1895-1940) ने उनका बीनवादन और गायन सुना और उन्हे नकद इनामात के अलावा 'संगीत रत्न भूषण' की उपाधि प्रदान की। काशी के स्वामी ज्ञानानन्दजी ने जो सगीत के प्रकाण्ड और धुरन्धर शास्त्रज्ञ और पारखी थे, खां साहब को सुनकर 'संगीत मनोरंजन' की उपाधि प्रदान की।

1931 मे म्युजिक्ल आर्ट सोसायटी बम्बई ने उन्हें, 'संगीत सम्राट' का खिताब दिया। विभिन्न म्युजिक कान्फ्रेंसों में आपको श्रेष्ठ गायक घोषित किया गया और कुछ कान्फ्रेंसों की अध्यक्षता भी आपने की।

1954 मे संगीत नाटक अकादेमी के मनोनीत किए जाने पर भारत के राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद ने आपको 1953 का हिन्दुस्तानी संगीत का प्रमुख आचार्य घोषित करते हुए सनद, शाल और शंकाल से नवाजा। इस अवसर पर खां साहब ने एक स्वरचित प्रशस्ति अप्रचलित राग शिवकल्याण मे सुनायी। बोले थे :

"राष्ट्रपति तुम हो देश के तारनहार।"

यह राग मियाँ तानसेन ने कभी शहंशाह अकबर के सामने गाया था।

उस्ताद रजब अली खां के एक चमत्कार के बारे मे प्रो. बी.आर. देवधर ने हमें बताया कि उन्होने खां साहब के शिष्य कृष्णराव मजुमदार से सुना था कि वे एक साथ दो स्वर अपने गले से निकालते थे। खां साहब ने अपनी इस अद्‌भुत स्वर-साधना का प्रदर्शन देवधरजी के घर में किया और उनके गले से 'सा' 'ग' और 'सा' 'प' एक साथ निकलने लगे। इस चमत्कार का गवाह मैं भी हूं।

देवधर साहब ने अपने विद्यालय में आयोजित 23 जनवरी, 1949 के जलसे का बड़ा ही प्रभावकारी चित्रण किया है। थोर संगीतकार मे वे लिखते हैं :

"सुननेवालों मे गवैयों की भरमार अधिक थी। उस्ताद फैयाज़ खां (बड़ौदा),

अल्ताफ़ हुसैन खाँ (खुर्जा), सिन्दे खाँ, विलायत हुसैन खाँ, अजमत हुसैन, लताफत हुसैन वगैरह आगरा घराने के गायक, प्रिंसिपल बाबूराव गोखले, बालकृष्ण बुवा कपिलेश्वरी, इस्माइल खाँ (जोधपुर), मजीद खाँ (सारंगिये) और तरुण पीढ़ी के कई गायक-वादक उस वक्त हाजिर थे। सिर्फ़ चार तम्बूरों के स्वर की संगत में 74 वर्ष के इस बुजुर्ग और कसे हुए कलाकार ने (शाम के) 6 बजे गाना शुरू किया। साथ में न सारंगी, न हारमोनियम। गाना शुरू से ही रँगता गया। खेम कल्याण, शिव कल्याण और कोई चार-पाँच अप्रसिद्ध रागों की चीजों ने अपने रंग की बहार ऐसी दिखायी कि श्रोता वाह-वाह कर उठे। स्वच्छ-सुरीली और दानेदार तानों में विविध गुम्फन हुई। अनेक अनपेक्षित तान प्रकारों ने श्रोताओं को आश्चर्यचकित कर दिया और तार षड्ज पर ई-कार के ठहराव में तो श्रोता तल्लीन हो गये। दो शिष्य भी साथ में तम्बूरे लिये बैठे थे। मगर तीन घण्टों में एक को भी आ करने की इजाजत खाँ साहब ने न दी। उस दिन खाँ साहब की आवाज़ में कम्पन ज़रा भी नज़र नहीं आया। प्रत्येक तान बिजली की तरह चमकती हुई जा रही थी। इस तरह यह गाना नौ बजे रात तक चलता रहा। इतने बूढ़े गायक के लिये बिना विश्रान्ति के तीन घण्टों तक भरपूर तैयारी के साथ निरन्तर गाते रहने के क्या मानी हैं इसे केवल गायक ही समझ सकते हैं। गाने की समाप्ति पर फ़ैयाज खाँ व्यास पीठ पर आये, उन्होंने खाँ साहब का हार्दिक अभिनन्दन किया। यह गाना बम्बईवालों के लिए अविस्मरणीय होकर रह गया।"

पं. कृष्णशंकर शुक्ल ने इलाहाबाद और लखनऊ कान्फ्रेंसों के दो अविस्मरणीय अनुभव सुनाये :

> इलाहाबाद कान्फ्रेंस (1939) में संगीतज्ञों के ठहरने की व्यवस्था तम्बुओं में की गयी थी। कलाकारों की एक छावनी-सी छा गयी थी। एक खेमे में खाँ साहब और हम लोग थे। पास ही में रहिमुद्दीन खाँ साहब का खेमा था। रात के खाने के बाद वे टहलते हुए हमारे खेमे में चले आये, रजब अली खाँ से किसी स्थायी की चर्चा छेड़ दी। थोड़ी देर में खाँ साहब ने वह स्थायी गाना शुरू कर दी। रहिमुद्दीन खाँ साहब ने मुझे इशारा किया, तानपुरी मिलाकर मैं छेड़ने लगा। थोड़ी देर में बिस्मिल्लाह खाँ, अहमद जान थिरकवा और कई गायक वादक वहाँ आ गये। थिरकवा खाँ साहब ने तबला सँभाल लिया। फिर तो सभा वहीं शुरू हो गयी। रात आधी से ज्यादा बीत गयी। गाना खत्म हुआ तो सारे गायक-वादकों ने वाह-वाह और सुब्हान अल्लाह के शोर से आसमाँ सिर पर उठा लिया। जब सब अपने-अपने खेमे में चले गए तो खाँ साहब ने घूमने का इरादा जाहिर किया। मैं शाल लाने के लिए लपका तो मना कर दिया। मैंने कहा, खाँ साहब, बाहर सर्दी है। सुबह के सेशन में आपको गाना है। सर्दी लग जायेगी तो गला बैठ

जायेगा। शाल से गला लपेटकर बाहर जाइये। तुरन्त बोले, "अरे बेटा, अब कैसा गाना-बजाना। गाना-बजाना तो हो गया। जिन्हें सुनाना था सुना दिया।"

रजब अली खाँ के गाने के झण्डे तो इलाहाबाद में गड़ गये। सुबह तो वेखबरें जमा होंगे। इन्हें गाने से क्या लेना देना। नतीजा जाहिर था। सबेरे आवाज ने साथ न दिया। कान्फ्रेंस में जम न सके मगर उन्हें लेशमात्र भी दुख न था। इस घटना से सिद्ध होता है कि अभिजातवर्गीय संगीत केवल दीक्षित और सक्षम श्रोताओं के लिए था। जन-साधारण मे लोकप्रियता प्राप्त करना उस जमाने के कलाकारों का लक्ष्य नहीं था। दूसरा तथ्य जो ऊपर लिखे हुए संस्मरणों से उभरता है यह है कि खाँ साहब गुनिजनों और संगीतज्ञों के गायक थे। झाँसी कान्फ्रेंस (1940) का संस्मरण सुनाते हुए भी शुक्लजी भाव-विभोर हो गये। उन्होंने कहा कि जब खाँ साहब का गाना हुआ तो श्रोताओं में कृष्णशंकर पण्डित, पण्डित ओंकारनाथ ठाकुर, झाँसी के आदत खाँ और अनेक महान् गायक वादक मौजूद थे। खाँ साहब का गायन वादन सुनकर सभी मन्त्रमुग्ध हो गये। और ओंकारनाथजी ने भावुक होकर दण्डवत् करते हुए कहा कि खाँ साहब, गाना तो अब आपका हक है। खाँ साहब आखिरी साँस तक गाते रहे। 1954 में अस्सी वर्ष की उम्र में राष्ट्रपति पुरस्कार उन्हें मिला।

अप्रैल 1954 मे मध्यभारत कला परिषद्, ग्वालियर की ओर से ग्वालियर मे उनका सम्मान हुआ और उस जलसे में उन्होने डेढ-दो घण्टे गाया। उसके पहले कला महाविद्यालय इन्दौर मे 27 फरवरी, 1954 को प्रसिद्ध शिल्पकार श्री आर. के. फड़के की अध्यक्षता मे एक जलसा हुआ जिसमे सुश्री हीराबाई बड़ौदकर, कृष्णराव मजुमदार और कुमार गधर्व ने पुष्पमालाएँ अर्पित की। इस जलसे मे डॉ. जहाँगीर खाँ ने तबले पर आपकी सगत की। 26 जून 54 को रीगल टाकीज, उज्जैन में आपके सम्मान में सभा हुई और आपने रात के दो बजे से साढे तीन बजे तक सोहनी, बसन्त आदि सुनाये। 11 सितम्बर, 1954 को देवास मे नागरिक सम्मान हुआ। इस जलसे मे जनता और नगरपालिका का अभिवादन स्वीकार करते हुए उन्होने कहा कि सारी उम्र गँवाकर अब सा लगाने का सलीका आया है। खाँ साहब का अन्तिम बड़ा कार्यक्रम बम्बई के मंबा देवी तालाब के मैदान मे सुर सिंगार ससद का वह जलसा था जो 2 अप्रैल, 1957 को हुआ था। अमीर खाँ साहब, बड़े गुलाम अली खाँ साहब, सितारा देवी आदि उसमे सम्मिलित थे। 83 वर्ष की उम्र मे इस बुजुर्ग गायक को चार आदमी पकड़कर मंच पर लाये थे। राम-कामोद, बिहागड़ा, बसन्त, मालकौंस आदि रागों में कोई दो घण्टे आपने तैयार गायकी प्रस्तुत की थी। आकाशवाणी इन्दौर के ग्रन्थालय मे उस्ताद अमीर

खाँ साहब के प्रयत्नों से 27 मार्च, 56 को एक जलसा किया गया जिसमें रजब अली खाँ साहब के गायन की संगत अहमद जान थिरकवा खाँ ने की थी, जो साथ-संगत और बढ़त का उदाहरण ठहरायी जा सकती है। बहुत द्रुत लय के आड़ा चौताल में काफी कान्हड़ा की वह चीज, "कहा जानू कौन दिसा कौन मारग प्यारे ने—गवन कीन्हो।" उनके गायन के जो टेप रिकार्ड मैंने सुने हैं उनकी ओर संकेत करना भी उचित होगा।

जौनपुरी	मन की लगन कौन जाने	तीन ताल
बहादुरी तोडी	पवित्र परिये	रूपक ताल
नायकी कान्हड़ा	नैना नही माने	
रामकामोद	सकल गुनिजन विद्या पहिचाने	रूपक ताल
हेमकल्याण	दैया री मैका	आड़ा चौताल (विलम्बित)
शंकरा	माथ तिल धरो	तीन ताल
वागेश्वरी	कौन करत तोरी विनती पिहरवा	तीन ताल
बसन्त	फगुआ बृज देखन को चली री	तीन ताल
बिहागडा	प्यारी पग हौले-हौले धरिये	आड़ा चौताल
मालकौंस	तुम बिन नाही लागे जिया	तीन ताल
मियाँ की मल्हार	बरसन लागी री बदरिया सावन की	तीन ताल
रामदासी मल्हार	या गांव की सब प्यारे बलमा तोरे	
	मिलन की हो रही रे चर्चा	एक ताल
	ए बना ब्याहन आयो	तीन ताल
गौड़ मल्हार	रुमझुम बदरा यूँ क्यों बरसे	तीन ताल
देस मल्हार	ऐ दई पिया बिन मोको कल	
	न परत अबक भई	रूपक ताल
झांझ मल्हार	कागा रे जारे जारे पिया का	
	सन्देसा मोरा कहियो जाय	अद्धा
खमाज	न मानूंगी, न मानूंगी, न मानूंगी	अद्धा
काफी कान्हड़ा	कहा जानूं कौन दिसा कौन	
	मारग प्यारे ने गवन कीन्हो	आड़ा चौताल

राग और तान

बम्बई में निवृत्ति बुवा सरनाइक से भेंट हुई। बुवा साहब उस्ताद अल्लादिया खाँ के शिष्य हैं। उनके पहले गुरु और सगे चाचा शंकर राव सरनाइक, उस्ताद रजब अली खाँ के शिष्य थे। रजब अली खाँ साहब ने निवृत्ति बुआ को खूब सिखाया था और कई बातें उन्होंने खाँ साहब को सुनसुनकर याद कर ली थी। इसलिए बुआ साहब खाँ साहब को गुरु मानते हैं।

भयंकर तानबाजी और तैयारी के कारण राग का स्वरूप बिगड़ तो नहीं जाता। खाँ साहब की तारीफ, सम्मान का आधार उनकी तनैती और तैयारी पर था लेकिन रागदारी की क्या स्थिति थी। इन प्रश्नों पर विचार विनिमय के दौरान बुवा साहब ने कहा कि :

"मेरे तो वे गुरु है। मैं उनके बारे मे क्या कहूँ। लेकिन इतना है कि उन्होंने रागदारी नही सीखी थी। कलकत्ता कान्फ्रेंस मे उन्होने मलुहा केदार गाया था। उतरते समय बड़े जोर का गांधार लगाते थे, सब चकित थे कि मलुहा केदार मे उतरते वक्त गाधार काहे को लगा रहे है—अप्रचलित रागो को वे अधिक इसलिए गाते थे कि उनके जाँचने का कोई तरीका न था। नाम बताकर गाते तो एक बात थी कि लोग पहचान सकते कैसा गा रहे हैं···।"

"···तान पल्टो पर उनका पूरा अधिकार था। इस काम में उनका जवाब न था।"

लगता है बुवा साहब को कही-न-कही कोई भ्रम हुआ है। खाँ साहब ने कभी बिना नाम बताये कोई राग नही गाया। उन्हे नये राग रचने का शौक भी न था। वही गाते थे जो बुजुर्गों से हासिल किया था। राग की बनावट में दखल नही देते थे। कुमार गंधर्व, प्रो. देवधर, कृष्ण शकर शुक्ल, कृष्णराव मजुमदार, उस्ताद अमीर खाँ, उस्ताद बडे गुलाम अली खाँ, उस्ताद विलायत हुसैन खाँ आदि इस बात की गवाही दे चुके हैं कि खाँ साहब रागदारी मे परिपक्व थे। उन्हें हजारो राग-रागिनियों का ज्ञान था और सगीत में उनकी विद्वत्ता में, कोई शक नही है। कुमार गधर्व

ने आकाशवाणी को एक भेंट में बताया कि उन्होंने कई बार खाँ साहब से राग-रागिनियों और बंदिशों के बारे में अपनी शंकाओं का समाधान किया और उस जमाने में एक प्रश्न के उत्तर में राग-जोग तत्काल सुना जबकि उस समय किसी ने उसका नाम भी न सुना था। सोरठ और सोरठी का प्रदर्शन भी खाँ साहब ने कुमारजी की फरमाईश पर किया था। कुमारजी उनकी अखाड़ेबाजी से अधिक महत्त्व उनकी विद्वता प्रचुर बातों को देते हैं।

प्रो. बी. आर. देवधर ने लेखक को स्वयं बताया कि रजब अली खाँ की तानें सदैव राग के अनुरूप होती थीं और राग का स्वरूप कभी नहीं बिगड़ता था। उन्होंने बताया कि तानबाजी के कारण ग्वालियर घराने की गायकी में राग इधर-उधर हो जाता है, क्योंकि सपाट तान हर राग की संरचना से मेल नहीं खाती।

पण्डित कृष्णशंकर शुक्ल ने कहा कि खाँ साहब को रागदारी नहीं आती थी, ऐसा उनके जीवन में किसी ने नहीं कहा। खाँ साहब केवल कुशलता और पटुता के अधिकारी नहीं थे बल्कि प्रकाण्ड विद्वान् भी थे। शुक्लजी ने कहा उस युग के गायकों को हम आधुनिक मापदण्ड पर नहीं कस सकते। रागों का स्वरूप हर घराने में अलग था। उनका आशय यह भी था कि रागों का मानकीकरण नहीं हुआ था। मजुमदार साहब, खण्डेराव, सुपेकर, वसन्तराव खानविलकर और शुक्लजी सबने कहा कि खाँ साहब को तिरोभाव, विवादी-स्वर प्रयोग, पास-पड़ोस के रागों की छाया दिखाने और एक राग में अनेक रागों का रूप दिखाने का शौक था। उन्हें हक था कि वे जैसा कमाल दिखाना चाहें दिखाएँ।

वे ऐसा अज्ञानवश या बुढ़ापे के कारण नहीं करते थे बल्कि अपने स्वभाव और प्रकृति के अनुकूल जानबूझकर करते थे। कुछ लोगों के लिए उनकी ये आदत हठ-धर्मी हो सकती है।

मैंने उनसे भैरव तोड़ी, देशकार, शंकरा, बसन्त बागेश्वरी, दरबारी, मालकोस भी सुने हैं और पटमंजरी, चाँदनी केदार, काफी कान्हड़ा, रामकामोद, नच्छामाख, भैरव भंकार, बसंत केदार, भटियार बहार, हेम कल्याण, बिहागड़ा, बहादुरी तोड़ी, शिवकल्याण, हुसैनी कान्हड़ा आदि भी। उनके स्वाभिमान, आत्मविश्वास, आधिपत्य में जरा भी फर्क महसूस नहीं किया। डॉ. एस. आर. गौतम ने उनसे नूर सारंग भी सुना था।

रागों के स्वरूपों में भिन्नता का एक कारण यह भी हो सकता है कि क़व्वाल बच्चों और किराना घरानों की तालीम मिली थी। रागों के कलावन्तों और क़व्वालों के स्वरूप जुदा-जुदा थे। लखनऊ (जयपुर) और लखनऊ (ग्वालियर) घरानों में कितना अन्तर हो गया।

उस्ताद अब्दुल करीम खाँ रागों के लिए वादी-संवादी के सिद्धान्त के विरुद्ध स्वर संवाद के कायल थे। उस्ताद रजब अली खाँ ने भी अपनी एक विशिष्ट रविश

बना ली थी। वे राग की संरचना में प्रचलित बल-बिन्दुओं को नहीं स्वीकारते थे। उत्तरांग प्रधान रागों को पूर्वांग से उठाते थे। मिश्रित रागों में निश्चित स्वरों से किसी राग को उठाने के बजाय हर किसी स्वर से राग उठा लेते थे। बसन्ती केदार में उन्होंने हर स्वर से बसन्त और हर स्वर से केदार की अवधारणा की है। निश्चित आरोहावरोह उन्हें सालग संकीर्ण और मिश्र रागों में पसन्द न था। विभिन्न रागांगों की प्रेरणा मिलते ही या जगह नज़र आते ही वे उस राग की छाया पर लपक पड़ते थे, साधिकार और पूरे आत्मविश्वास के साथ।

तिरोभाव दिखाने, रागों की सीमाओं का उल्लंघन करने और राग के साथ मनमानी बरतने का प्रलोभन और प्रोत्साहन उनकी रोमानी प्रवृत्ति के द्वारा उन्हें मिलता था। रोमानियत और अभिजातीयता के ऐसे द्वन्द्वात्मक संघर्ष जब भी होते तो अन्ततः नियम, संयम, अनुशासन और शास्त्रसम्मत रहने का संकल्प उन्हें अभिजातवर्गीय ही प्रमाणित करते। मर्यादा और घरानेदार गायकी की सच्चाई प्रबल साबित होती। ऐसे कलाकार को जिसकी तालीम और बुनियादी रियाज़ उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चतुर्थांश में हुआ था, आज के सिद्धान्तों और मूल्यों की कसौटी पर कसना कालातिक्रमण दोष से बचा नहीं पायेगा। खाँ साहब का चित्त यदि स्थिर होता तो वे राग की प्रस्थापना और विस्तार कायदे और चैन से करते और स्थायी अंतरा का शास्त्रोक्त निर्वाह करके ही अलंकरण और तैयारी की तरफ बढ़ते। यदि उनके चित्त और स्वभाव की चंचलता हावी रहती तो वे बैठते ही तैयारी और तनैती पर उतर आते और तरह-तरह की तानों की गुफन, तिहाइयों, मींड और सूत आदि के विलक्षण प्रयोगों से विभिन्न चमत्कारपूर्ण बनावटों का आनन्द प्रदान करते। बोल बढ़त, लय के साथ छेड़छाड़, स्वर और ताल की बढ़त और उपज से वे सुननेवाले को दम साधने पर मजबूर कर देते और अचानक मुखड़ा पकड़कर सम पर आकर इस उत्कंठन का विसर्जन करते। राग कायम रहता चाहे लय कितनी ही तेज हो। उपज के निरन्तर जाग्रत और सक्रिय रहने के कारण तानों की, लयकारों के प्रकारों की, सम पर आने की तरीकों की ओर बल पोंचों की पुनरावृत्ति का सवाल कम उठता और हर बार नयेपन का एहसास होता। कणों, जर्बी, मींड और सूत, बहलावे और गिटकिरी के प्रयोगों ने उन्हें और उनकी गायकी को सदाबहार और हरत पहलू बना दिया था। वे राग के विस्तार में तार्किक पथ से हटकर आसंगों के तर्क को अपना लेते और यह प्रवृत्ति उन्हें अपने युग से आगे ले जाती थी। वे मनमौजी थे और तहसीने नाशिनास (नासमझ की प्रशंसा) की परवाह बिलकुल न करते थे, अलबत्ता मुकूते अदाशिनास (जानकार की चुप्पी) से ज़रा विचलित हो जाते थे।

वे प्रयोगधर्मी और विद्रोही प्रवृत्ति के गायक थे। किन्तु उनके प्रयोग राग के दायरे के अन्दर होते थे। वे खयाल से उपज को सर्वाधिक महत्त्व देते थे। राग का

दायरा खींचकर कल्पना और सृजनशीलता को मुक्त छोड़ देना उन्हें पसन्द था। यही वजह थी कि वे हमेशा ताजा और सदाबहार नजर आते थे।

मैं तो कस्बी होना तो दूर अताई पंडित और रसिक भी नहीं हूँ। इतिहास मेरा विषय है। खाँ साहब के चरणों में बैठ-पैठकर कानों को संगीत की आदत हो गयी। बस। उपलब्ध टेप रिकार्डों में से एक ऐसा भी है जिस पर राग का संकेत नहीं मिलता। कई गुनियों को सुनवाया मगर कोई थाह नहीं पा सका, भोपाल में रामदास मुंगरे ने सुना तो अनुमान लगाया कि रामदासी मल्हार का एक रूप हो सकता है। निवृत्ति बुआ की बातों को सुनकर तसल्ली न हुई। इतना महान् संगीतज्ञ जिसे नायक का दर्जा मिलना चाहिए, रागदारी न जानता होगा और रागों को अशुद्ध गाता होगा यह बात गले नहीं उतरी। यह टेप सामने आया तो ईमान जरा डगमगाने लगा। तरह-तरह की बातें मन में आने लगी। कहीं बुढ़ापा तो अपना असर नहीं दिखा रहा है।

फिर देवास में ठाकुर प्रतापसिंह के बाड़े में शंकरराव सुपेकर और ललिता शंकर पंडितजी से मुलाकात हुई और उस टेप की चर्चा हुई। पंडितजी एक पुरानी कापी उठा लाये और वही बंदिश, वही चीज रामदासी मल्हार के अन्तर्गत खाँ साहब द्वारा लिखायी हुई देखी।

ऐ बना ब्याहन आये।

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्ण विभूषितः।

रंजको जनचित्ताना स रागः कथितो बुधैः।।— (मतंग कृत बृहद्देशीय से)

स्वरवर्ण विभूषित ध्वनि-समूह जो जन चित्त रंजन कर सके, राग है। छायालग रागों में विभिन्न रागांगों को कुशलता से दिखाना और फिर मुख्य आधारभूत स्वर समूह में लौट आना उस्तादी है। घरानेदार गायकी में सालग और संकीर्ण रागों में उपज और सृजनात्मक कल्पना के प्रयोग अधिक होते थे और ऐसा अज्ञानवश नहीं, रंजकता और प्रयोगात्मकता को प्रमुखता देने के कारण होता था। संगीत चिन्तामणि में आचार्य बृहस्पति ने लिखा है :

"राग उपकरण है, उसकी शुद्धि साधना है साध्य नहीं। साध्य तो भावनाओं का चित्रण है।"

सालग संकीर्ण रागों में खाँ साहब कलावंत मत पर कव्वाल मत को तरजीह देते दिखायी देते हैं। अमीर खुसरो अपनी और कव्वालों की उपज पर गर्व करते हुए कहते है :

मातवानेम कज अबेरशमें बारीक चुमू

जैले दो परदए ब गाना बहम बरदोजम्।

[हम लोग बाल से बारीक रेशम के तार से दो विपरीत पर्दों (रागों) को मिलाकर एक कर सकते है।]

उस्ताद रजबअली खाँ के बुजुर्ग समकालीनों में उस्ताद अल्लादिया खाँ साहब ही वह हस्ती हैं जिनका नाम उनके साथ लिया जाना सार्थक है। वैसे, दोनो मे आजीवन कभी नही बनी। एक आश्चर्यजनक परस्परविरोधी निन्दास्तुति प्रीत्य-प्रीति का सम्बन्ध था दोनों का। 1944 में उस्ताद अल्लादिया खाँ महाराजकुमारी के गुरु बनकर इन्दौर मे आये थे। रामभाऊ दातेजी के यहाँ ठहरे थे। दाते साहब से इच्छा प्रकट की कि रजब अली खाँ को बुलवा लो। कार भेजी गयी और ड्राईवर के हाथ सन्देश दिया गया कि इन्दौर चले आयें! खाँ साहब ने तैयार होते हुए पूछा :

"क्यों भाई, ऐसी क्या जरूरत आ पड़ी?"

"बम्बई से अल्लादिया साहब आये हैं और यह ख़त भेजा है। आपसे मिलना चाहते हैं।"

ख़त में लिखा था :

"भाई रजबअली खाँ, अब हमारा तुम्हारा आख़िरी वक़्त है। आ जाओ तो गले मिलकर सारे गिले-शिकवे दूर कर लें। और जो कुछ हुआ उस पर खाक डालें।"

खाँ साहब ने कहा जो आदमी बम्बई से इन्दौर आ सकता है क्या बाईस मील इन्दौर से देवास नही आ सकता? फिर एक कागज पर लिख भेजा :

"भाई अल्लादिया खाँ साहब,

"जिस दुश्मनी को हमने उम्र भर पाला है, अब आख़िरी वक़्त में उसका गला क्यों घोंट दें, हमारा-तुम्हारा इन्साफ अब अल्लाहमियाँ के यहाँ ही होगा।"

जैसा कि अर्ज किया जा चुका है, निजी स्तर पर दोनों में परस्पर अप्रियता थी, लेकिन दोनों एक-दूसरे की प्रतिभा और कला-कौशल का बेहद सम्मान करते थे। आज तक एक का नाम आते ही दूसरा याद आ जाता है। गोबिन्दराव टेंबे ने अल्लादिया खाँ साहब की ये विशेषताएँ बतायी हैं :

> खाँ साहब की असली आवाज उनके भाई हैदर अली खाँ और पुत्र मंजी की आवाज की जाति की पाटदार और पुरतासीर थी लेकिन उस पर रियाज़ का जोर पड़ने से अवरुद्ध हो गयी थी और बैठ गयी थी। पहले जैसी रोशनी के लौटने की उम्मीद छोड़कर उन्होने अपनी गायकी को अपनी वर्तमान आवाज के अनुरूप ढाला और दुनिया मे नाम पैदा किया। ऐसी जहानत (बुद्धिमत्ता) से काम लेना सबके लिए साध्य नही! …गाना शुरू करते हुए वे चीज़ के राग, लय और स्वरालाप पर बहुत ध्यान देते और उनके प्रति जागरूक रहते। ऊपर उल्लिखित सभी क्रियाओ मे सामर्थ्य भर हर सौन्दर्य बिन्दु को विभिन्न रंगो से चमकाकर उभारते। अगर किसी काम पर या किसी तान पर श्रोता दाद देते, तो उसे दोहराते नही। अगर दोहराते भी तो उसमे चतुराई से कोई-न-कोई परिवर्तन अवश्य कर देते। श्रोताओ को किसी अपेक्षा का अवसर ही

नही देते।

...अल्लादिया खाँ साहब जवानी की उम्र से ही कमाल की तैयारी से फिरते थे, लेकिन एक वयोवृद्ध सारंगिये के कान खोलने के लिए उन्होंने इस तैयारी का प्रदर्शन कम करके लय की मर्यादा के अनुसार फिरत का काम करना शुरू किया। ताल लीला वे अनेक प्रकार से दिखाते थे लेकिन ऐसा करते समय इस बात का ध्यान रखते थे कि जो जगह श्रोताओ के मन मे बन गयी है, लय का आन्दोलन उससे हटकर तो नही हो रहा है। यही वजह है कि उनकी गायकी आखिर तक प्रवाहशील और प्रभावशील रही।

केसरबाई केरकर के हवाले से प्रो. देवधर ने लिखा है :

बहुत से रागों के नाम वे नहीं बताते थे। गाते भी थे और सिखाते भी थे मगर बिना नाम बताये। यदि कोई कहता कि अमुक चीज काफी कान्हड़ा में है तो कह देते—होगा बाबा, वही नाम होगा, लेकिन यह न कहते कि उस राग का यही नाम है।

प्रो. देवधर ने लिखा है :

1. इस घराने की (अल्लादिया खाँ) सम पर आने की पद्धति बहुत आकर्षक है।
2. इस घराने में अप्रचलित रागों का अधिक प्रचार है।
3. इनके गाने में आलापी और बोल तान मुझे नही मिली।
4. कोई राग बीस मिनट से अधिक नहीं सुना।
5. आड़ी लय का बरताव—ताल की हर मात्रा पर आघात।

विलायत हुसैन ने लिखा है :

1. अस्सी वर्ष की आयु तक तान मे से स्वर नही गया था।
2. आपकी आवाज काबू में थी।

सुलोचना यजुर्वेदी और आचार्य बृहस्पति के मतानुसार :

1. बम्बई के कान्वोकेशन हाल मे खाँ साहब के जीवन का अन्तिम गाना हुआ था। उस समय उनकी आयु 81 वर्ष की थी। उस समय न तो उनकी तान बेसुरी थी और न गाने मे कोई कमजोरी थी।
2. कठिन रागों में भी फिरत दिखाते थे।

16 मार्च, 1946 को संगीत सम्राट उस्ताद अल्लादिया खाँ (अतरौली-उनियारा-कोल्हापुर) का स्वर्गवास हो गया। इस समाचार ने देवास में उस्ताद रजब अली खाँ साहब को भावविह्वल कर दिया और वे फूट-फूट कर रो दिये। इस घटना का साक्षी स्वयं मैं हूँ। खाँ साहब रोते जाते और कहते जाते—अल्लादिया नही, मेरा गाना मर गया। अब मैं किसके लिए गाऊँगा। खाँ साहब को अपने भाई युसुफ खाँ, अपने मौसेरे भाई बाबू खाँ बीनकार, उस्ताद अल्लादिया खाँ साहब और

अपने भतीजे और शिष्य अमानत खाँ साहब के मरने का जितना सदमा हुआ था, बयान नही किया जा सकता। अल्लादिया खाँ साहब के देहावसान ने मानसिक रूप से रजब अली खाँ की प्रवृत्तियां ही बदल दी। एक अजीब-सा चैन उनकी बेचैनी और तड़प पर छा गया। 70 वर्षो मे जो शैली और तकनीक उनकी आदत में आ गयी थी, उसमे आमूल परिवर्तन तो क्या आता लेकिन लड़ंत, आक्रोश और प्रतिस्पर्धा नही रही।

दोनो की गायकी का तुलनात्मक अध्ययन फलदायक सिद्ध होगा।

दोनो को अप्रचलित रागो का शौक था। संकीर्ण रागो मे भी दोनो अपना कमाल दिखाते थे, दोनो लय के साथ खिलवाड़ करते थे और ताल की हर मात्रा पर स्वराघात भी दोनो की विशेषता थी। दोनों सम पर आने मे बड़ी चतुराई दिखाते थे और अनपेक्षित जगह से अचानक सम पर आकर श्रोताओ को चौका देते थे। अल्लादिया खाँ साहब की गायकी पर ध्रुपद का और रजब अली खाँ साहब की गायकी पर तन्त्रकारो का प्रभाव था। दोनो बुढ़ापे से नही हारे। और अस्सी से ऊपर तक अपना जौहर दिखाते रहे।

अल्लादिया खाँ साहब रागो के नाम बताने मे संकोच करते थे। रजब अली खाँ साहब धड़ल्ले से नाम बताकर सरे आम प्रचलित और अप्रचलित राग गाते थे।

अल्लादिया खाँ साहब सभी बातें सामने रखने मे एहतियात करते थे और छिपाते थे। रजब अली खाँ साहब समुद्र की तरह फैला हुआ मन रखते थे। कोई भी गोता लगाकर मनचाहे मोती ला सकता था।

अल्लादिया खाँ साहब ने बुद्धिमत्ता के साथ खास आवाज़ मे गाकर अपनी आवाज की विकृति को सौन्दर्य मे बदल दिया। रजब अली खाँ साहब ने भी तीस-चालीस वर्ष पन्द्रह घण्टे रोज़ाना से अधिक रियाज़ किया था लेकिन उनकी आवाज योगाभ्यास, प्राणायाम और ओंकार साधना के कारण बिगड़ी नही। वे अन्त समय तक स्वाभाविक आवाज़ को गोटा, बिचौला और बारीक करके गाते रहे। तार-अतितार के स्वरो से कला के सहारे खेलते रहे।

रजब अली खाँ साहब की तानो का गुफन अधिक पेचीदा और तैयार था। उन्होने मेरुखण्ड सिद्ध कर लिया था और विभिन्न अलकारो के टुकड़ो को एक-दूसरे मे मिलाकर एक नया रूप देने में कुशलता प्राप्त कर ली थी। उनके यहाँ कव्वाल बच्चों के जमजमे, तहरीरें, गमक और फिरत बड़ी तैयारी मे आते थे। स्वरो के वर्ताव मे किराने का, सीधे स्वरवाले रागों की सपाट तानो मे ग्वालियर का प्रभाव नजर आता था। उनके बहलावे मीड और अलंकार एक विशिष्ट रंग रखते थे।

तिरोभाव और समीपवर्ती रागो की छाया दिखाने में उनका अपना कौशल था। वे अनुकार नही भावुक थे। नयी बातें पैदा करना और स्वर लय का वैशिष्ट्य

दिखाना उनका काम था। उनकी लय बहुत तेज हो जाती थी। आडा चौताल झपताल, रूपक, एक ताल, तीन ताल, तिलवाडा, अद्धा और झमरा में गाते थे। आड़ा चौताल उनका बहुत प्रिय ताल था। योग और भक्ति का ऐसा संतुलन और सामंजस्य और कहीं शायद ही मिले।

संगीत (हाथरस) में एक लेख पढ़ा था जिसमें लेखक ने अपना अनुभव लिखा है। खाँ साहब ने यह कहकर 'हाय, खमाज में कितना चैन है" एक घण्टे तक खमाज गाया। खमाज में एक घण्टा खिंचने का सामर्थ्य है, यह किसे मालूम था। खाँ साहब बोलतानें और सरगम भी बरतते थे। बोलतानों की लय बाँट के साथ बरतने में उन्हें कमाल हासिल था। अल्लादिया खाँ साहब, जैसाकि सुना गया है, बोलतान को महत्त्व नहीं देते थे।

मेरे संगीत जाननेवाले सहयोगियों में महेन्द्र भट्ट और दी. स. जीवने ने कुछ टेपों को सुनकर खाँ साहब के गाये हुए कुछ रागों का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है।

बहादुरी तोड़ी

अवरोह में शुद्ध मध्यम का सहज प्रयोग हुआ है।

सां - नि नि ध प प मं म ग रे सा

मं प ध प म ग रे सा

मं प ध नि ध प से रामकली का आभास

जौनपुरी (मन की लगन कौन जाने)

इस राग में ग ध नि का प्रयोग होता है।

प ध नि सों इस तरह लगाकर

म प ध नि रें सां। रें रें सां नि ध। नि रें सा करने के कारण अड़ाना दिखायी देता है। भैरवी तो स्पष्ट नजर आती है। एक दो बार शुद्ध धैवत भी लगा है। जौनपुरी तोड़ी गोत्र और बहार गोत्र दोनों में आती है। मअदनलमूसीकी (मुहम्मद करम इमाम) में जौनपुरी को मालश्री और भैरवी से मिश्रित रागिनी बताया है। अड़ाना, भैरवी, मालश्री आसपास के राग हैं।

रामदासी मल्हार

यह वही रामदासी मल्हार है जिसके बोल हैं 'ऐ बना ब्याहन आयो', शहाना, कान्हड़ा, गौड़ और मियाँ की मल्हार के रंग स्पष्ट हैं। तिरोभाव दिखाते हुए शहाना का स्वर समुदाय ध, नि, प, सां, निध निप निध दिखाया है। ध, नि सां, निध, सा, नि निऽऽसां रे सा कहकर बहार रंग आया है।

मप ध नि सां रे, नि सां, निऽ, ध, नि, सा ये स्वर-संगीतियाँ मियाँ मल्हार का रूप दिखाती है।

शहाना और कान्हड़े को साथ बरतकर बहुत कुशलता और चतुराई दिखायी है। मियाँ की मल्हार, रामदासी मल्हार, गौड़ मल्हार, देस मल्हार, और खमाज के कुछ अंश, मेजर शिवप्रसाद के यहाँ एक निजी महफिल के, टेपो पर नरेन्द्र पण्डित के पास है। बसन्त केदार, मलुहा केदार, चांदनी केदार, जौनपुरी, काफी कान्हडा आदि टेप कृष्णराव मजुमदार के पास है। बहादुरी तोड़ी, जौनपुरी, बसन्त, शंकरा, बागेश्वरी, मालकौस, रामकामोद, हेमकल्याण, बिहागड़ा, आकाशवाणी के संग्रहालय मे मौजूद है। बम्बई में एच. आर. राजा (बाबूभाई) के निजी संग्रहालय मे खाँ साहब द्वारा उन्हीं के निवास स्थान पर गाये गये पूरिया, यमन, जयजयवन्ती के रिकार्ड भी टेपों पर सुरक्षित हैं।

निर्मला जोशी ने संगीत नाटक अकादमी के लिए देवास आकर वायर रिकॉडिंग की थी और खाँ साहब ने कुछ अछोभ और प्रचलित रागो तथा अपनी विशिष्ट तान शैली के नमूने रिकार्ड कराये थे।

1944 या 45 मे विक्टोरिया हाईस्कूल देवास छोटी पाँती के वार्षिक स्नेह सम्मेलन में खाँ साहब ने मालकौस का एक तराना सुनाया था और राग की आत्मा मध्यम को वर्ज्य करके चार स्वरो में ही राग की अवतारणा की थी। लगता था कोई जादूगर किसी को मूछित करके उसके प्राय: निष्प्राण शरीर को अधर मे उठा रहा है। खाँ साहब ने तराने को बड़े मुहम्मद खाँ साहब की बन्दिश बताया था। चार स्वरो के मालकौंस का जिक्र टेंब्रेजी ने अल्लादिया खाँ साहब के सिलसिले मे भी किया है, मगर तराने का नही।

बातें जो भुलायी नहीं जातीं

खाँ साहब अजीबोगरीब हस्ती के मालिक थे। उनके व्यक्तित्व की विलक्षणताएँ उनके कलाकार की महानता को और प्रकाशित कर देती हैं।

खाँ साहब के जीवन में कई वारांगनाएँ आयीं, गयीं—गबीबाई, श्यामबाई, मथुरीबाई, और भी कई बाइयाँ। एक बाई बम्बई में उनसे गण्डा बँधवा बैठी थी और डेढ़ हजार रुपये नज्र कर चुकी थी। खाँ साहब ने उन्हें कुछ सिखाया नहीं और देवास चले आये। हर तरह के प्रयत्नों में विफल होकर बाई ने बम्बई की अदालत में मुकद्दमा दायर कर दिया। खाँ साहब की वकालत पं. विष्णु नारायण भातखडे ने की। भातखंडेजी की दलील थी—'गण्डा बँधवाते वक्त दिये गये पैसे गुरुदक्षिणा होते हैं अतः किसी शिष्य को किसी भी कारणवश उन्हें लौटाने का आग्रह करने का अधिकार नहीं। इस दलील को अदालत ने स्वीकार किया। यही बाई महाराज मल्हारराव बाबा साहेब पवार के रनिवास में आ गयीं और महाराज कुमार मार्तण्ड राव की माता बनी।

खाँ साहब को सफ़ाई, अच्छे खानों और इत्र का जबरदस्त शौक था। वे सिर्फ खाते ही अच्छा नहीं थे, पकाते भी बहुत अच्छा थे। मिठाई के बड़े शौक़ीन थे। घर कच्चा था। फर्श लीपकर चिकना किया जाता था। लिपाई-पुताई का हमेशा ख़याल रखते थे। चटाई पर बैठते थे। बीड़ी पीते थे। सूर्यास्त के बाद देसी शराब की बोतल का काग उड़ाते और अपने गले को सींचते। लगभग अस्सी वर्ष की उम्र में, सिविल सर्जन डा. तावरे ने शराब न पीने और बीड़ी कम करने की सलाह दी।

"अरे डॉक्टर, इन दोनों को मुँह लगाये आधी सदी हो गयी। अस्सी-नब्बे का हो गया हूँ, अब कितना जिलाओगे। इन्हें छोड़ दूँ या मुँह लगाए रखूँ—अब मरना तो है।"

खाँ साहब का दिल और हाथ हमेशा खुले रहे लेकिन किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया, यहाँ तक कि रुपया देकर कुछ खरीदते तो रेजगारी के लिए भी हाथ नहीं फैलाते थे। दुकानदार से कहते, 'जेब में डाल दे।'

मान, सम्मान, इनाम, इकराम, विदायगियाँ, नजराने कम नहीं मिले। जोड़ते तो लखपति हो जाते। मगर हमेशा हाथ तंग रहा। सरस्वती के साधक के पास लक्ष्मी कितनी ठहरती। मुजतबा हुसैन ने मेरे बारे में लिखा था, "हिसाब के कायदों में से जिस शख्स ने घटाना ही घटाना सीखा हो, जोड़ना जानता ही न हो, उसका बैंक बैलेन्स मालूम···," यह बात मुझसे ज्यादा खाँ साहब के लिए खरी उतरती है। पैसा हाथ में आ भर जाये बस, हातिम की कब्र को लात मारने लगते थे। सारे मोहल्ले की दावत करते और दो-एक बार तो नगर खाना भी कर चुके थे।

एक दिन कहीं बाहर से संगीत सभा के कुछ आयोजक आये और साढ़े-सात सौ रुपये के अल्प नजराने पर उन्हें अपनी संगीत सभा में गाने के लिए, डरते डरते आमन्त्रित किया। खाँ साहब की तबीयत और मूड दोनों खराब थे, इन्कार कर दिया। आयोजक बेचारे निराश लौट गए। अभी सड़क के नुक्कड़ पर ही पहुँचे होंगे कि एक बूढ़ी माई आ गयी और कहने लगी, "खाँ साहब बेटी ब्याहना है, कहीं से पाँच सौ मिल जायें तो हाथ पीले कर दूँ। आज वह जिन्दा होते···" खाँ साहब ने आयोजकों के पीछे बेटे को दौड़ाया। वे आये। कहा, अगर बूढ़ी माई को उसी समय पाँच सौ दे दें तो उनके आयोजन में आकर गा सकते हैं। आयोजकों ने तुरन्त भुगतान कर दिया।

बजरंगपुरा, देवास के कुछ मेरे साथी खाँ साहब के पास गणेशोत्सव के संगीत के आयोजन के लिए निमन्त्रण देने आये। निमन्त्रण स्वीकार कर लिया तो लड़के एक-दूसरे का मुँह देखने लगे और कुछ कहने में संकोच करते नजर आये। खाँ साहब ने उनके मन की थाह ली, मुस्कराकर मूँछों पर हाथ फेरते हुए बोले—

"तुम लोग चिन्ता न करो। सब कुछ ठीक होगा।" गाये, जी खोलकर गाये। कार्यक्रम समाप्त हुआ तो एक लड़का चन्द साथियों के साथ काँपते हाथों में एक लिफाफा लेकर हाजिर हुआ। खाँ साहब से डरते-डरते कहने लगा, "खाँ साहब, आप पर तो देश को गर्व है। आप तो महान् है। हम बच्चे है। अधिक चन्दा जमा न कर सके। आप हमारा मन रखने के लिए यह लिफाफा स्वीकार करें।" खाँ साहब ने लिफाफा छूकर कहा :

"बेटे, तुम हमे क्या दोगे। तुम्हारे सभापति से हमने पहले ही बहुत कुछ ले लिया है। इसे तुम्ही रखो।" समिति का अध्यक्ष साथ ही में था। वह परेशान हो गया। खाँ साहब ने गणेश जी की प्रतिमा की ओर संकेत करते हुए कहा, "वही हैं न तुम्हारे सभापति।"

संगीत के समारोह में एक नये गवैये को गाना था। सामने बड़े-बड़े गायक-वादक और धुरन्धर विद्वान बैठे हुए थे। गायक के ठीक सामने दरबारी पगड़ी लगाये बैठे, आदत के मुताबिक मूँछों पर ताव दे रहे थे, उस्ताद रजब अली खाँ। गवैये की हिम्मत न पड़ सकी कि आ करे। घबरा गया। खाँ साहब ने इशारा

करके पास बुलाया, गले लगाया, सिर पर हाथ फेरा और कहा :

"क्यों बेटा, आसमाँ पर चील, कौए, गिद्ध, बाज, शिकारे सभी उड़ते हैं न ?"

"जी···बजा···फ़रमा रहे है।"

"और तोते, मैनायें, कबूतर, फ़ाख्तायें भी उड़ती है।"

"जीऽजी हाँ।"

"अगर शिकारी-परिन्दे के डर से नन्हे मासूम परिन्दे उड़ना छोड़ दें ?"

"तो खत्म हो जायेंगे।"

"बस। तो जाओ। अपने आप पर भरोसा रखो। जम कर गाओ।"

खाँ साहब इत्र के बहुत शौकीन और बड़े पारखी थे। एक इत्रफ़रोश लखनऊ से आया हुआ था। खाँ साहब ने बुलाया और ये दिखा, वो दिखा कहने लगे। इत्रफ़रोश ने कुछ चीजें दिखायी और फिर सिर से पैर तक हुलिया देखकर बोला, "हुजूर, जब कुछ खरीदना नही है तो नाहक देखने की तकलीफ क्यों फरमा रहे है। ज़ियादा इत्र सूँघने से जुकाम हो जाता है।" खाँ साहब को उसकी ये बातें अच्छी नही लगी, मगर क्या करते। हाथ तंग था। कुछ ही दिनों के बाद इन्दौर से डेढ़ हजार रुपये बिदायगी मिली। देवास लौटे—क्या देखते हैं, वही इत्रवाला फिर फेरी लगा रहा है। बुलवाया। मूँछों पर ताव दिया।

"हिना दिखाओ, असली होना चाहिए।"

इत्रफरोश ने इत्र की कुप्पी खोली ही थी कि जोर से चिल्लाये—

"अबे बन्द कर, बन्द कर, ये भी कोई हिना है।"

"राजा! अन्दर से असली हिना की शीशी लाना।"

शीशी आयी तो खोलकर इत्रफ़रोश पर छिड़कते हुए कहा, "देख बूदम, हिना इसे कहते हैं। कितना इत्र है तेरे पास ?"

"होगा कोई एक हज़ार का।"

"राजा! इस नामुराद को एक हज़ार दे दो और तमाम दीवारों और जूतों पर इसका सारा इत्र डलवा दो।"

साहूकारों ने उधारी बन्द कर रखी है। अलबत्ता हलवाई, पान-बीड़ी वाला, और दूधवाला उधार दे रहा है। दूर किसी देहात से एक सम्भ्रान्त मेहमान घोड़े पर आ गया। मुट्ठी खुलनी नहीं चाहिए। भेद गुप्त रहना चाहिए। मेहमान के लिए मिठाइयाँ और कचौरियाँ हलवाई के यहाँ से आ गयी हैं। एकाएक घोड़े का ध्यान आता है। बेटे को हुक्म दिया जाता है। हलवाई के यहाँ से पाँच सेर जलेबियाँ एक थाल में घोड़े के आगे रख दी जाती हैं।

इन्दौर दरबार में गाना है। देवास से इन्दौर बाईस मील की यात्रा ताँगे पर होनी है। ताँगेवाला जल्दी-से-जल्दी लौटना चाहता है। घोड़े पर चाबुक बरसाता जा रहा है। खाँ साहब लाख मन्नत-समाजत करें कि भैया जानवर को क्यों मारते

हो, जल्दी नहीं है। मगर तांगेवाला कब मानता है। दे चाबुक, दे चाबुक। इन्दौर के जूने राजवाड़े के चौक पर तांगा रुकता है। पास ही सर्राफ़ा है, सोने, चाँदी, हीरे, जवाहरात के अलावा मिठाइयों का बहुत नामी बाज़ार। पाँच सेर जलेबियाँ लाकर घोड़े के सामने रख दी जाती हैं। तांगेवाले ने ऐसी सवारी बहुत कम देखी थी। उसकी अपेक्षाएँ एकदम बढ़ जाती हैं। हाथ फैलाता है तो तिरस्कार के साथ जवाब मिलता है, क्यों लालच का हाथ फैलाता है, अबे तुझे किस बात के पैसे चाहिए। चाबुक मारने के सिवा तूने किया ही क्या है? जिसने मेहनत की और मार खायी उसे उसका मेहनताना अदा कर दिया गया। अब भाग।

एक बार मोटरकार ख़रीद ली। दो-तीन महीने में बेच दी। कहने लगे, इससे तो रईसों की बुवास आने लगी है। रियाज़ और मिज़ाज दोनों में ख़लल पड़ रहा है। सरस्वती के भक्त के पास लक्ष्मी का क्या काम।

उर्स या किसी उत्सव-मेले में जितना नज़राना मिलता, सब दरगाह के मुत-वल्लियों या उत्सव के व्यवस्थापकों को और भिक्षुकों को दे आते।

इन्दौर दरबार में किसी गवैये को ख़ाँ साहब से ज़ियादा बिदायगी मिल गयी तो ख़ुद को जो कुछ मिला राजवाड़े के दरवाज़े पर ही फ़कीर-ब्राह्मणों को दान कर दिया। महाराज को खबर हुई तो फिर से इनाम दिया और दूसरे गवैये से एक रुपया अधिक दिया।

धार की एक संगीत सभा में एक सारंगीवादक को इन्दौर अपने साथ ले गये थे। सारंगीवादक स्वर मिलाने के लिए पहले ज़री का, फिर मख़मल का, फिर रेशम का गिलाफ़ उतार ही रहे थे कि मूँछों पर बल देते हुए मुस्कराकर ख़ाँ साहब ने पूछा :

"क्यों मियाँ, गिलाफ़ ही गिलाफ़ है, या सारंगी भी है?" सारंगीवाला झेंपकर मुस्कराने लगा।

बम्बई से किसी नये शिष्य को पच्चीस-तीस चीज़ें एक ही बार में दे आये। देवास के पुराने शिष्यों ने शिकायत की कि इतनी चीज़ें तो आपने एक बार में अपने पुराने सेवकों को भी नहीं दीं। यह तो आपने बड़ी ज़ियादती की है। ख़ाँ साहब मुस्कुराये और कहने लगे :

"अरे भाई। इतने नाराज़ क्यों होते हो। कनखजूरे की हज़ार टाँगों से एक टूट भी गयी तो क्या बिगड़ गया।"

ख़ाँ साहब में मध्ययुगीन सामन्ती समाज के सामाजिक और नैतिक मूल्य बहुत प्रमुख थे।

मुफ़लिसी और आशिकाना मिज़ाज।
देनेवाले ये क्या दिया तूने॥

उनके मिज़ाज में आशिकी ही नहीं, रईसी और कलाकारी भी बहुत थी। दुनिया-

दारी वे कभी नही सीखे। उन्हें अपनी आन का सदा बहुत खयाल रहा। आन-बान की साख रखने के पीछे वे बरबाद रहे। स्वामिभक्ति उनमें कूट-कूट कर भरी थी। देवास रियासत की पवार शाही पगड़ी पर उन्हें बड़ा गर्व था। राष्ट्रपति के सनद, शाल, शंकाल आदि लेते समय भी यही पगड़ी उनके सिर पर थी। 1954 में भी।

नागपुर मे भी सरदार देशमुख ने बिदायगी के नज़राने के अलावा साफा बांध कर उनका सम्मान किया तो खां साहब बिदायगी की रकम से अधिक साफ़ा बांधने से खुश हुए और इसे बहुत बड़ी इज्जत ठहराया। संगीत का ताजदार ही पगड़ी और साफे की कद्र कर सकता है। खां साहब को अपनी आन-बान का जितना खयाल था उतना कम लोगों को होता है।

विभिन्न विरोधाभासों ने उनका स्वभाव निरूपित किया था। वे रेशम की तरह मुलायम भी थे और इस्पात की तरह सख्त और मजबूत भी। वे अत्यन्त विनम्र भी थे और अत्यन्त दम्भी भी। वे उस्ताद और संगीत सम्राट कहलाने पर जोर भी देते थे। और संगीत सागर के तट पर बैठे प्यासे की उपमा भी अपने आप के लिए इस्तेमाल करते थे। उनके व्यक्तित्व का आन्तरिक चित्रण, एक दूसरे को काटती हुई आड़ी-तिरछी लकीरों की सहायता के बिना असम्भव है।

खां साहब को सन्त-संगति में बहुत आनन्द आता। योगियों और फकीरों की संगत मे बैठकर आत्मा-परमात्मा की चर्चा करना, योग और तसव्वुफ़ के रहस्यो को समझना और सन्तों की वाणी सुनना बेहद पसन्द था।

बम्बई में एक बार वर्ली में ठहरे हुए थे। गिरगांव के कुछ कीर्तनकारों की एक मण्डली का गायन सुना और उन्हे अच्छा लगा। इन कीर्तनकार बुवा लोगों से उन्होंने कहा कि आप लोग इतना अच्छा गाते हैं, अगर एक चक्र में कीर्तन करें तो और भी प्रभावशाली होगा। चक्र में गाने से उनका आशय था सारे बुवा लोग एक साथ गाने बैठें और पंक्तियां बारी-बारी से गाकर मुखड़ा एक साथ पकड़ लें। बुवा लोगो को खां साहब का परामर्श मन भा गया और उन्होने एक चक्री कीर्तन-मण्डली बना ली जो आज तक उसी शैली मे भजन-कीर्तन करती है।

खां साहब देवास के नाथ योगी—गायक रुगनाथ बाबा (रघुनाथ बाबा) को अपने चबूतरे पर या अपने रियाज के कमरे में बिठाकर उनसे चिकारे या रावण हत्थे पर भजन सुनते और देर तक भावविभोर होकर रोते रहते।

खां साहब को करुण रस बहुत प्रिय था। वे कहा करते थे कि करुण रस सभी रसो की आत्मा है। उनके गायन मे शृंगार, रौद्र, वीर और शान्त रस का आभास होता था। बीन में करुण रस बहुत स्पष्ट रहता था।

खां साहब नाद को ब्रह्म मानते थे। वे कहा करते थे कि :

"संगीत ऐसे दिल की खुशबू है जो जलकर कबाब हो गया हो। घायल दिल की पुकार ही संगीत है।

"मन्द्र सप्तक नाभि मे, मध्य सप्तक सीने में, तार सप्तक सिर में रहता है।

"इश्क या भक्ति या प्रेम की चोट लगाये बिना आवाज़ में तासीर पैदा नही होती।" ओम उनके लिए सम्पूर्ण स्वर था।

खाँ साहब अति तार षड्ज कला से लगाते थे जिससे आवाज फटती नही थी और ऊपर पहुँचकर भली लगती थी। यह भी ओंकार साधना का फल होगा।

उन्हें बुजुर्गों की दुआओं, गरीबों की आहों और साधु-सन्तों के आशीर्वाद का बहुत ख़याल रहता था।

सच बोलने और मुँह पर खरी-खरी सुनाने में उन्हें जरा भी संकोच नही होता था। कोई बात अच्छी लगती तो खुलकर दाद देते, बुरी लगती या आपत्तिजनक लगती तो बिना लिहाज़ के फट से कह देते।

उस्ताद अमीर खाँ साहब एक बार बम्बई से इन्दौर आये हुए थे। वापसी के लिए देवास भी आये। खाँ साहब के अभिन्न कृपापात्रों मे से थे। खाँ साहब उन्हे अमानत खाँ की जगह देखने लगे थे। उनके वालिद शाहमीर खाँ साहब से बड़ी गाढ़ी छनती थी। उनके यहाँ जुमों (शुक्रवारीय जातीय संगीत सभाओं) मे सैकड़ों बार शरीक हो चुके थे। खाँ साहब से कहने लगे :

"चचा, लोग मेरे बाप को सारंगिये कहकर मुझे नीचा दिखाने की कोशिश कर रहे हैं।"

"बेटा अमीर, सारंगी बजाने में कोई ऐब नही। और सच का क्या बुरा मानना।"

"लेकिन, अब्बाजी वीनकार भी तो थे।"

"यह तो मुझे नही मालूम भैया।"

"चचा, आपकी और अल्लादिया खाँ साहब की लड़ाई भी तो इसी बात को लेकर हुई थी कि उन्होने छत्रपति से कह दिया था, मुगल खाँ सारंगिये के शागिर्द हैं।"

"बेटा वह जमाना और था और फिर जो बात कही थी वह बिलकुल गलत थी। अगर उसमे ज़रा भी सच्चाई होती तो मैं बुरा न मानता। वह जमाना ही दूसरा था। तुम जानते हो मैंने साबित कर दिया था कि उन्होंने बोहतान लगाया था। लेकिन कोई मेरे बारे मे कहे कि मैं सारंगिये से भी सीखा हूँ तो मैं बुरा नही मानूंगा।"

"कैसे ?"

"हैदरबख्श साहब ने बरसों मुझे मेहनत करायी है। संगत करते-करते कई बातें मेरे गले मे बिठायी हैं। उनका और मेरा सबक़ एक था। वे मेरे उस्ताद ही से सीखे थे। फिर अल्लादिया खाँ से उन्होने बहुत-सी बातें, जो मेरे वालिद के उस्ताद की थी, ली थी और मुझे लौटा दी थी। जिस माल पर मेरा हक था,

किसी-न-किसी तरह मुझे वापस मिल गया।"

"लेकिन गण्डा तो नहीं बाँधा था।"

"तो क्या हुआ ? मैं कहाँ कह रहा हूँ कि मेरे उस्ताद थे। मगर उस्ताद से कम भी न थे। मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा था और वो सारंगिये थे। बेटा, मेरे भी कई शागिर्द सारंगिये हैं। तुम्हारे मामूँ को ही देखो।"

अमीर ख़ाँ साहेब, उनकी इन बातों से खुश नजर नहीं आये। बड़े गुलाम अली ख़ाँ साहब भी उन्हें बेहद चाहते थे। कलकत्ता में एक हज़ार की नज्र भी पेश कर चुके थे। बाअदब मिलते थे। जयन्ती लाल जरीवाला ने अब्दुल करीम ख़ाँ साहब की जीवनी में लिखा है :

"पंजाब के बड़े गुलाम अली ख़ाँ साहब सबरंग की चीज़ें गाया करते थे। लोग समझते थे कि सबरस और सबरंग एक ही है। संगीतज्ञों की एक कान्फरेन्स में देवास के रजब अली ख़ाँ ने इस गुत्थी को सुलझाया कि सबरस और सबरंग दो अलग-अलग व्यक्ति थे। अपनी बात के प्रमाण में सबरस की कुछ अप्रचलित चीज़ें सुनाकर उन्होंने सिद्ध कर दिया था कि 'सबरंग' की चीज़ों से अलग हैं। उन्होंने यह भी घोषणा की कि सबरंग बड़े गुलाम अली ख़ाँ का उपनाम (तखल्लुस) होगा। बड़े गुलाब अली ख़ाँ वहाँ, अमीर ख़ाँ साहब और दूसरे लोगों के साथ मौजूद थे, मगर प्रतिवाद न कर सके।"

डॉ. जहाँगीर ख़ाँ साहब ने अपना अभिमत इन शब्दों में प्रकट किया :

"क्या बात है साहब ऐसा आदमी अब नहीं पैदा होता है। हर मरतबे सम से उठकर सम पर आते थे। घुमाते नहीं थे जैसे आजकल लोग घुमाने लगे हैं। बड़ी फन्देदार तानें थीं उनकी। उनके मिजाज़ को कोई नहीं पहचानता था। ऐसा-जैसा तबलिया तो उनके साथ ठेका भी नहीं लगा सकता था। गड़बड़ करता तो आड़ा चौताल, ऐसी लय में फेंक देते कि तबलेवाला घबरा जाता।"

डॉ. एम. आर. गौतम भी उनके अनन्य भक्त हो गये थे। आकाशवाणी इन्दौर और आकाशवाणी दिल्ली में, वे मेरे सहयोगी रहे हैं। इन्दौर में थे तो ख़ाँ साहब के दर्शनों के लिए अक्सर देवास चले जाते थे। गौतम साहब ने ख़ाँ साहब की उन्नीसवीं बरसी पर उन्हें याद करते हुए कहा :

"उस्ताद रजब अली ख़ाँ साहब से मेरा परिचय सन् 1956 में हुआ था। उसके पहले उनका गाना मैंने देवास में जाकर सुना था। उन दिनों वह देवास रियासत में ही रहा करते थे। 56-57 में, मैं आकाशवाणी इन्दौर-भोपाल में म्यूजिक प्रोड्यूसर के पद पर काम किया करता था। तब मुझे ख़ाँ साहब से मिलने का हर महीने मौका मिलता था। ख़ाँ साहब के व्यक्तित्व के बारे में और क्या कहूँ—वह वैसे काफी घमण्डी थे। अपनी गायकी पर काफी गर्व करते थे और कहते थे कि उनके जमाने में उनके जैसा गानेवाला कम मिलता था।

एक अल्लादिया खाँ साहब को कहते थे कि मैं उनको गानेवालों में मानता हूँ। उनके अलावा पं. भास्कर राव बखले को भी मानते थे। बाहर से घमण्डी मालूम पड़ने के बावजूद दिल के बड़े सरल थे और बड़े शौकीन तबीयत के आदमी थे। वाकई असली कलाकार थे। बहुत विलक्षण गायकी थी उनकी। तान ही के वे उस्ताद थे, राग आलापी कम करते थे। तान ही में उनकी गायकी अच्छी तरह खिलती थी। वैसे वे मध्यलय मे ही गाया करते थे। द्रुतलय में वे अक्सर आड़ा चौताल ही मे गाते थे। आड़ा चौताल को ऐसी लय तक बढाते थे कि उस जमाने में भी ठेका व गाना मुश्किल हो जाता था। उस लय मे भी आजादी से, आसानी से, शान्ति मे तानें फिरती थी जबकि उनकी उम्र 80 से ऊपर हो चुकी थी। जब वे सुर में, लय मे गाते थे तो आवाज थोड़ी काँपती थी मगर जब तान के गाने का वक्त होता था तब बिजली की तरह उनकी आवाज दौड़ती थी। उनकी तानो मे यह खासियत थी कि उनमे एक विशेष बल पेंच होता था। नाना प्रकार के छन्द का प्रयोग करते थे और ताल की जो झोंक है उसको काटती हुई चलती थी उनकी तान। ऐसा लगता था कि कैसे यह सम पर आयेंगे। मगर ऐसे मुश्किल से मुश्किल बल पेंच-वाली तान लेकर ऐसे मुखड़ा पकड़कर सम पर आते थे कि बेतहाशा वाह-वाह निकलती थी, आह निकलती थी। बहुत ही विलक्षण गायक थे। प्रचलित हो कि अप्रचलित राग, उनके लिए दोनो बराबर थे। मैंने उनसे राग कामोद सुना है, बहादुरी तोड़ी सुनी है और नूर सारंग, आशा सारग, ऐसे अप्रचलित राग भी सुने है।"

रमेश नाडकर्णी भी इन्दौर मे रह चुके है। खाँ साहब के आखिरी दिन उनका दर्शन करने का सौभाग्य उन्हें मिला था। वे भी यादों के संसार में खो से गये :

"देवास और रजब अली खाँ साहब का नाम एक-दूसरे से इस अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है कि एक के बगैर दूसरे को याद करना नामुमकिन-सा है। देवास मे सारी बातें हमे उस्ताद की याद दिलाती है। टेकरी, मल्ल, बाजार और वे लोग जिन्होने उस्ताद का गाना अन्त तक सुना। टेकरी के साथ उस्ताद ने आधी सदी के प्रखर ताप और बारिश सहे और साथ ही देखे थे इस छोटी-सी रियासत के बदलते हुए हालात। मंदिर के घंटानाद के साथ उस्ताद भजन गाते थे। वे आम जनता के बीच घूमते और बहुत बार उन्हे ग्राम भोजन भी कराते, फिर वह चाहे अपनी चिर-परिचित गरीबी की हालत मे क्यों न आ जाते। उस्ताद अजीब विरोधाभास के इन्सान थे। वे धार्मिक प्रवृत्ति के आदमी थे, लेकिन स्वय कभी किसी धर्म के कट्टर अनुयायी नही थे। वो नमाज पढते थे, भजन गाते थे, और कभी नाथ पन्थियो के साथ बैठकर कण्डे जलाकर धूनी रमाते थे। वे खुद शीलनाथ के भक्त थे। वे पक्के थे दोस्ती और दुश्मनी में

आठ जनवरी।

नहीं, नहीं, दिन कौन-सा है ?

जुमे रात (बृहस्पतिवार)।

अच्छा तो अब चलें। कहा सुना माफ करना।

काल से 85 वर्ष जूझते रहे। संगीत उनका अस्त्र था। संगीत ही उनका शस्त्र था। काल ने ताल के रूप में भी पंजे लडाये मगर उन्होंने मरोड़कर एक तरफ डाल दिया। काल ने बुढापे के रूप मे उनकी आवाज को दबाना चाहा मगर वह आखिरी दम तक नहीं डूबी। काल ने राजनीति की बिसात से उनके संगीत के आश्रयदाताओं को हटाकर बाजी के बाहर कर दिया मगर वे जीवन के शतरंज का खेल प्यादों से खेलते रहे। आखिर बाजी जिच हो गयी। वे कालजयी कलाकार थे। लय नहीं छोडी और सम पर आकर उनका विलय हो गया।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत को उन्होंने नया मोड़ देने की कोशिश की। इलेक्ट्रानिक्स के युग मे सगीतोपयोगी आवाज का प्रयोग कैसे हो इसका आभास उन्हे हो चुका था। वे अन्त तक स्वर, राग, लय, ताल और तासीर के प्रति जागरूक रहे। दम छोड़ दिया, सम न छोड़ी।

खाँ साहब का कुनबा बहुत फैला हुआ था लेकिन वे अपने-आप में मस्त थे। उस्ताद मुराद खाँ उनके फुफेरे भाई थे। उस्ताद बाबू खाँ बीनकार तथा पारसी थियेटर के मशहूर गायक, सआदत बिन अशरफ के बाप अशरफ खाँ उनके मौसेरे भाई थे। आज के मशहूर सितार नवाज उस्ताद रईस खाँ के वालिद उस्ताद छोटे मुहम्मद खाँ बीनकार उनके चचेरे भाई के बेटे थे। मुहम्मद खाँ साहब के बाप थे भोदू खाँ, उनके बाप थे काले खाँ जो मुगल खाँ साहब के सगे भाई थे। उनके मामू बबुले खाँ के बेटे गफूर खाँ धार में हैं। उनके एक और चचेरे भाई के बेटे निसार खाँ आजकल खाँ साहब के पुराने मकान मे देवास ही मे सपरिवार रहते है।

मथुरी बाई ने बहुत निबाह की। उनसे एक बेटा भी हुआ। रजा अली खाँ नाम रखा और पुकारते थे राजा। राजा भैया भी लगभग 55 वर्ष की उम्र मे 1964 मे चल बसे। खाँ साहब उनके गले को गाने के लिए उपयुक्त नही समझते थे। इसलिए वे आ भी करते तो खाँ साहब डाँटकर चुप कर देते। इकलौता होने के कारण चाहते भी बहुत थे। अपनी मृत्यु से कुछ दिनो पहले मुहल्लेवालों, रिश्तेदारो और मेजर शिवप्रसादजी की बहुत सिफारिश पर खाँ साहब ने रजा अली खाँ के कन्धे पर बीन रख दी और बीन की चन्द बातें सिखा दी थी। वैसे खाँ साहब कहा करते थे कि—जरूरी तो नहीं कि संगीतकार का लड़का भी सगीतज्ञ बने। अगर गला या हाथ इस काबिल नहीं तो लोहारी, सुतारी (बढ़ईगिरी) क्यों न कर ले ? रजा अली खाँ को राग-रागिनियों की, और चीजो की अच्छी याददाश्त थी और खाँ साहब को तानो की जगहों और हिसाबो के रहस्य याद थे। मगर वह नाम पैदा न कर सके।

तबला

1. ठाकुर प्रतापसिंह (देवास)
2. मुहम्मद अहमद खाँ (बम्बई)

खाँ साहब की शैली और तान या रचना तथा ख़याल की बन्दिशों से प्रेरणा तो कई लोगों ने ली है। उस्ताद अमीर खाँ साहब तो उनकी तानों पर फ़िदा थे। अमीर खाँ साहब के नये मकान में रियाज़ का जो कमरा था उसमें उनकी बैठक के ठीक सामने एकमात्र तस्वीर खाँ साहब की थी। मैंने कहा खाँ साहब यह क्या? कहने लगे :

"अरे साहब! चचा रजब अली खाँ की द्रुत की तैयारी और तनैती का जवाब कहाँ। मैं तो अल्लाह से दुआ करता हूँ कि बड़े मियाँ की तनैती का एकाध अंग ही मेरे गले में आ जाये तो निहाल हो जाऊँ। उन्हें सामने रखकर गाता हूँ।"

कुमार गन्धर्व को कुछ परायी आग तापकर खुश होनेवालों ने कई बार खाँ साहब के मुँह लाने की कोशिश की मगर कुमारजी ने हमेशा भक्ति और श्रद्धा का भाव उनके प्रति कायम रखा और कभी मुकाबले की भावना को पास न फटकने दिया। कुमारजी ने हमेशा मुक्त कण्ठ से खाँ साहब की प्रशंसा की और उनकी कुछ बन्दिशों को अपने सामर्थ्य भर अपनाने की कोशिश की। उदाहरण उन्होंने नरेन्द्र पण्डित को बताया कि :

'रजब अली खाँ की गायकी क्या है मैं सच कहता हूँ उनकी सौन्दर्य दृष्टि मुझे मालूम है क्योंकि सम्पर्क आया है...। उनकी याद मे मैंने बन्दिशें भी बनायी हैं कि जिसमें रजब अली खाँ दिखें। 'ऋतु बसन्त...' कभी सुनी हैं उनसे। बागेश्री की बन्दिश! अरे क्या बात है यार 'ऋतु बसन्त', यह तो खाँ साहब को ही गाना चाहिए। इस बन्दिश पर वह घण्टों बात करते थे। परसों बम्बई में मैंने बागेश्री मे ऋतु बसन्त खाँ साहब के ढंग से गायी। उसमें कई जगहें ऐसी हैं जहाँ रजब अली खाँ का गला ही गिर सकता है। उनका ढंग, उनकी जगहें जितना मुझसे बनती है मैं दिखाता हूँ।"

इस कथन की रोशनी में कुमारजी की चेतन-अचेतन अवस्थाओं मे पड़े खाँ साहब के प्रभावों की टोह मे रहना निरर्थक न होगा।

खाँ साहब के कुछ पट्ठे शिष्यों के बारे मे जानना भी जरूरी है।

गणपतराव देवासकर

छप्पन के अकाल में अर्थात् 1898-99 ई. लगभग राजस्थान से कई परिवार दाने-पानी की तलाश में मालवा (म. प्र.) की ओर निकल आये। ऐसा ही कोई अकाल-पीड़ित परिवार अपने नवजात शिशु को कपड़े मे लपेटकर सड़क पर छोड़ गया

था। देवास की एक सब्जी-भाजीवाली बाई का हृदय सड़क पर पड़े हुए इस शिशु को देखकर भर आया। उन्होंने बच्चे को उठाकर प्यार किया और घर ले आयी।

कोल्हापुर से जब खाँ साहब देवास लौट आये और गजीबाई उनके निकट सम्पर्क मे आयीं तो उन्होंने बालक गनु को उनके सिपुर्द कर दिया। खाँ साहब ने जी लगाकर तालीम देना शुरू किया। और गनु से गणपतराव बना दिया। लोग भी कहते है और खुद गणपतरावजी भी कहा करते थे, "गाने की शक्ल ही नही, अपनी सूरत-शक्ल भी रजब अली खाँ की ही रखता हूँ। क्यों न हो, आखिर बेटा किसका हूँ?"

गणपतरावजी 18-19 वर्ष के रहे होंगे कि खाँ साहब किसी बात पर बिगड़ गये और उन्हें घर से निकाल दिया। वे कोल्हापुर के छत्रपति शाहू महाराज के जामाता देवास बड़ी पाँती के महाराजा तुकोजी राव का पत्र लेकर कोल्हापुर पहुँचे और छत्रपति की सिफ़ारिश पर उस्ताद अल्लादिया खाँ ने अपना शागिर्द बना लिया। इस प्रकार उनकी तालीम प्रायः एक ही गायन परम्परा में जारी रही। गणपत रावजी ने इन्दौर के प्रो. पै और लीला भटकर को गाना सिखाने की दक्षिणा के रूप में अंग्रेजी सीखी और पंजाब से मैट्रिक पास कर लिया। शेक्सपियर के नाट्यांश उन्हें मुखाग्र थे और धाराप्रवाह अंग्रेज़ी बोलते थे।

वे बहुत फक्कड आदमी थे और मुँहफट भी। उनसे फरमाइश करके गाना सुनना हर आदमी के लिए सम्भव न था। 1949 से उन्होंने महफिलों और जलसों मे गाना बन्द कर दिया।

दादा (गणपतराव) का गला और तान पल्टे रजब अली खाँ साहब के नमूने पर ढले थे और अल्लादिया खाँ साहब का अन्दाज भी आ गया था। जौनपुरी, केदार और अड़ाना के दो ग्रामोफोन रेकार्ड 1936 मे बने थे। जिसने सुने है वह तुरन्त रजब अली खाँ और अल्लादिया खाँ का स्मरण करेगा।

सुरेश हल्दनकर, नलिनी मुलगाँवकर आदि उनके शिष्य बम्बई में हैं। जुलाई 1978 मे 78 वर्ष की उम्र में उनका देहान्त हो गया।

अमानत खाँ

जमाल खाँ साहब के लड़के अमानत खाँ 1901 के लगभग पैदा हुए थे। वे रिश्ते में रजब अली खाँ साहब के भतीजे थे। खाँ साहब ने उन्हें बचपन से ही साथ रखा और खूब-खूब सिखाया। ऐसी तैयारी करायी कि लोग दाँतों तले अँगुली दबाने लगे लेकिन खाँ साहब का अनुशासन, सयम, नियम कष्टसाध्य थे और वे अपनी बातों पर तो और अधिक सख्ती बरतते थे। एक सुबह के सबक़ में अमानत खाँ से कोई तान न हो पा रही थी। बार-बार कोशिश करते मगर नही बनती। उस्ताद को क्रोध आ गया और उन्होंने तानपुरा अमानत खाँ के सिर पर दे मारा और वे

घर छोड़कर चले गये। इन्दौर पहुँचे तो तीन दिन खाने के लिए भी तरस गये। एक तांगेवाले बूढ़े की नज़र पड़ी तो हाल सुनकर तरस खाकर अपने घर ले गया। एक-दो साल अमानत खाँ अज्ञातवास में रहे और तांगा चलाते रहे।

एक रोज़ स्टेशन पर उस्ताद नसीरुद्दीन खाँ डागर नज़र आ गये। बम्बई से आ रहे थे। अमानत खाँ ने लपककर उनका सामान ले लिया और अपने तांगे में रख लिया। तांगा थोड़ी दूर चला तो गुनगुनाना शुरू किया। नसीरुद्दीन खाँ को उनकी गुनगुनाहट सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। तांगा गफूर की बजरिया में उनके घर पहुँचा तो उन्होंने अमानत खाँ को घर में बुलाया और कहा कि गाना सुनाओ। कुछ देर शर्माने, हिचकिचाने और अदब करने का नाटक होता रहा। आखिर अमानत खाँ ने तानपुरा माँगा तो खाँ साहब को और भी अचरज हुआ। तानपुरा मिला तो अचरज दूना हो गया और तबलेवाले के बुलाने के निवेदन पर तो चरम सीमा तक पहुँच गया। गाना सुना तो नसीरुद्दीन खाँ से रहा न गया और अमानत खाँ के कान खींचकर कहा, 'सच-सच बताओ तुम रजब अली खाँ साहब के क्या लगते हो?' अमानत खाँ ने सबकुछ बता दिया और करबद्ध प्रार्थना की कि अभी उनके चचा को उनका समाचार न दिया जाये। अब वे पाँच-छः महीने नसीरुद्दीन खाँ साहब के साथ गुज़ारकर उन्हीं के साथ बम्बई में आये। यहाँ उन्हें बिरादरी के एक जुमे में पेश किया गया और फिर संगीत सभा में गवाया गया। सुननेवाले दंग रह गये।

रजब अली खाँ साहब अपने किये पर बहुत पछता रहे थे। उन्होंने बम्बई भी अपने चेलों को अमानत खाँ के गायब हो जाने की सूचना दे रखी थी। उन्हें सूचित किया गया कि अमानत खाँ बम्बई में हैं और महफिलों में अपना रंग जमा रहे हैं। खाँ साहब दौड़े-दौड़े बम्बई पहुँचे और बहुत रोये। दोनों फिर एक हो गये। सीखने-सिखाने का सिलसिला भी फिर से जारी हो गया।

बम्बई में अमीर खाँ साहब और अमानत खाँ साहब एक ही खोली में बरसों साथ-साथ रहे। दोनों अभिन्न मित्र थे और साथ में रियाज़ करते थे। अमानत खाँ साहब पर रजब अली खाँ साहब को नाज़ था। वे कहा करते थे कि मेरा चिराग तो अमानत है, यही मेरा नाम रोशन करेगा। अमानत खाँ उनका भविष्य थे। अमानत बहुत ही हाज़िर जवाब,और जिन्दादिल आदमी थे। वे अपनी मौज में, उस युग के बड़े-बड़े उस्तादों और गायकों की वाणी और मुद्रा की हूबहू नकल उतारते। और जब कुछ बेसुरे लोगों की नकल उतारते तो सुननेवाले लोट-पोट हो जाते। उनकी आवाज़ में बला की तासीर थी। बहुत मीठी और दानेदार। मिठास और तासीर, फिरत और तैयारी में भी कायम रहती थी। उनका गला बिलकुल खाँ साहब के गले-सा फिरता था। वे जलतरंग के भी बहुत अच्छे कलाकार थे और यह कला भी रजब अली खाँ साहब ने सिखायी थी।

अमानत खाँ साहब 3 जनवरी, 1968 को देवास मे हृदयगति अवरुद्ध हो जाने से चालीस वर्ष की उम्र मे ही स्वर्गवासी हो गये। उनकी मृत्यु अकाल और असमय हुई थी।

उनके एकाएक चले जाने से रजब अली खाँ की उम्मीदों पर पानी पड गया और उनके सपनों के महल कागज के मकानों की तरह उठ गये। बिजली गिर पड़ी, साँप सूँघ गया। वे विक्षिप्त हो गये। देवास के लोग मेरे साथ उस समय के साक्षी हैं कि किस तरह खाँ साहब हफ्तो सड़कों पर अपने सिर पर खाक डालते पागलो की तरह घूमते थे। इस सदमे का उन पर उम्र भर असर रहा। उनके तीन रिकार्ड भी बने है। हस किंकणी, नट, केदार, मध्यमादि सारंग और एक ठुमरी गायी है।

वामन राव देशपाण्डे और लता मंगेशकर उनके प्रमुख शिष्यो मे से हैं। फ़िल्म तारिका नरगिस और उनके भाई अनवर हुसैन को भी उन्होंने सिखाया था।

कृष्णराव मजुमदार

रजब अली खाँ साहब के पट्टशिष्यो में से एक है। 1907 का आपका जन्म है। आपके भाई प्रभाकर मजुमदार रजब अली खाँ के शिष्य थे। आप बचपन से ही खाँ साहब के यहाँ आते-जाते रहते थे। अपने भाई के अलावा आपको अण्णा साहब गोरे और भास्कर राव खाण्डेपारकर से संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा मिली। लखनऊ के मॉरिस कॉलेज (आज का भारतखण्डे सगीत विद्यालय) मे भी रहे। 1937 मे खाँ साहब के साथ कलकत्ता कान्फरेंस मे भी गये। वहाँ से लौटकर खाँ साहब की अद्‌भुत गायन शैली, बौद्धिक और भावुक उपज और जीनियस को देखकर कृष्णशंकर शुक्ल के साथ मेजर शिव प्रसाद के बँगले पर विधिवत खाँ साहब के शिष्य हो गये। खाँ साहब की आज्ञा लेकर बम्बई मे अपने आवास के दौरान भिण्डी बाजार घराने की प्रसिद्ध गायिका अंजनीबाई मालपेकर के यहाँ रियाज जारी रखा और उनसे भी सीखते रहे। अंजनीबाई ने बिना गण्डा बाँधे सिखाने मे कोई आपत्ति नही की। बम्बई में आप इजीनियरिंग का प्रशिक्षण लेने देवास बड़ी पाँती की सरकार की ओर से भेजे गये थे।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि खाँ साहब के शिष्यों में से तीन नामों मे कृष्ण, किशन, दो के नामों मे गणेश, गणपत और दो के नामों में शंकर, शिव आता है। एक के नाम में तो कृष्ण और शंकर दोनो शामिल हैं। सामूहिक अवचेतन के दृष्टिकोण से यह अच्छा अन्वेषण होगा कि इस वस्तुस्थिति का विश्लेषण किया जाये। कृष्ण स्वर और रागानुराग के, गणेश विद्या और लोक मंगल के तथा शिव ताल, नृत्य और सृष्टि के कल्याण के प्रतीक हैं।

कृष्णराव मजुमदार को सभी लोग मामा साहब कहते हैं।

1938 से आप आकाशवाणी के बम्बई, नागपुर, इन्दौर तथा दिल्ली केन्द्रों

से संगीत का प्रसारण भी कर रहे हैं। आपके नेशनल प्रोग्राम भी हो चुके हैं और 1958 के आकाशवाणी संगीत सम्मेलन में भी आपने भाग लिया।

खाँ साहब आपको बहुत चाहते थे। आपके गायन में मिठास और मज़ेदारी पर विशेष जोर था। सपाट तानों और फिरत का आपको बहुत शौक रहा। खाँ साहब ने उन्हें काफ़ी कान्हड़ा, बसन्ती केदार, नट कामोद, ललिता गौरी, अहीर भैरव, चाँदनी केदार जैसे अछोभ राग विशेष रूप से सिखाये।

खाँ साहब के साथ आप लखनऊ, झाँसी, कलकत्ता आदि में आयोजित संगीत की कान्फरेंसो में शरीक हुए। और 1947 में जब देवास बड़ी पाँती के महाराजा विक्रमसिंह पवार कोल्हापुर की गद्दी पर छत्रपति शाहूजी महाराज के नाम से बैठे तब उनके राज्याभिषेक के जश्न में अमानत खाँ के साथ आप भी सम्मिलित थे।

1967 में आप मध्यप्रदेश के लोक कार्य विभाग के कार्यपालन मन्त्री की हैसियत से रिटायर होकर इन्दौर में आवासित हैं। स्वास्थ्य और गले के साथ न देने के कारण आजकल गाना छोड़ रखा है किन्तु अपनी छोटी बेटी कल्पना तथा अन्य शिष्यों को सिखाते हैं। आप देवास बड़े पाँती के रहनेवाले है।

मधुकर गुलवाणी, खण्डेराव सुपकर, सुधा भण्डारी आदि आपके शिष्य और अजय पोहनकर आपके जामाता है।

कृष्ण शंकर शुक्ल

उज्जैन के एक ब्राह्मण कुल में 1911 में जन्मे पण्डित कृष्ण शंकर शुक्ल गायक, हारमोनियम वादक और संगीत शिक्षक की हैसियत से बहुत प्रसिद्ध है और ग्रामोफोन कम्पनियों में और प्रसिद्ध फिल्म संगीत निर्देशक हुसनलाल के सहायक भी आप रहे। 1936 में आपने बड़वानी में खाँ साहब का गाना सुना। मन को बहुत भाया। आप मजुमदार साहब के साथ ही मॉरिस कॉलिज से संगीत विशारद कर चुके हैं। 1937 में मेजर शिवप्रसादजी के बँगले पर मजुमदार साहब के साथ ही आपने भी खाँ साहब का गण्डा बँधवाया और सात-आठ वर्ष तक उनसे तालीम ली। आप भी खाँ साहब के साथ कई कान्फरेंसो और जलसों में गये।

खाँ साहब ने आपको गमक अंग पर जोर डाला था और हारमोनियम संगत का अवसर देकर खाँ साहब ने उन्हें सिद्धहस्त बना दिया।

आप खाँ साहब के शिष्य ही नहीं, अनन्य भक्त भी है। रोजाना सुबह खाँ साहब के चित्र की पूजा करते है। आपकी गुरु-भक्ति अवर्णनीय है।

मानव मन्दिर संगीत विद्यालय बम्बई के प्राचार्य और कई शिष्यों को आपने तैयार किया है। आपके सुपुत्र उमाशंकर शुक्ल कुशल सितारवादक है। कोलम्बिया कम्पनी ने आपके कुछ ग्रामोफोन रेकार्ड भी बनाये थे।

हमीं सो गये दास्ताँ कहते-कहते

खाँ साहब की विलक्षण संगीत प्रतिभा और व्यक्तित्व का मूल्यांकन जरूरी है। उन्होंने संगीत को एक नयी दिशा देने में अल्लादिया खाँ साहब, अब्दुल वहीद खाँ साहब, बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर, विष्णु नारायण भातखण्डे और विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ही की तरह अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया। बीसवी सदी के तीसरे दशक से ख्याति प्राप्त करनेवाले अनेक गायकों पर उनकी गायकी और शैली का स्पष्ट प्रभाव है। *यद्यपि उनकी तनैती और राग के साथ आज़ादी बरतने* और उनके उपज अंग की मुश्किलात का अनुसरण असम्भव है। बहुत-से श्रेष्ठ गायकों ने उनके किसी-न-किसी तान-प्रकार, किसी-न-किसी अंग को अपनाकर अपनी गायकी को उनके ढंग पर बढ़ाने का प्रयत्न किया है।

खाँ साहब महफिल में आलाप नहीं करते थे। मध्य लय से शुरू होते और राग का निरूपण करके राग, लय, ताल और बोलों के साथ रगरेलियाँ और छेड़छाड़ शुरू कर देते। सत्तर वर्ष की उम्र तक मध्य, मध्य द्रुत, द्रुत और अति द्रुत लय में तैयारी के साथ दानेदार फिरत दिखाना उनकी गायकी का आम चलन था।

कव्वाल बच्चों के ज़मज़मे, तहरीर, बहलावे और तेज़ फितरत किराना घराने की मीड और सूतकारी स्वर का लगाव और चीज़ को रंजित करने और सजाकर पेश करने का ढंग और ग्वालियर घराने की सपाट तानें (राग के स्वभाव के अनुरूप अगर सपाट तान जा सके) सट्टे और बोल बाँट उनकी गायकी के ताने-बाने बन गये।

खाँ साहब को मेरुखण्ड के टुकड़ों को लय खण्डों में नये रूप देकर, एक टुकड़ा कहीं का, दूसरा कहीं का मिलाकर तैयारी के साथ पेश करने का जबरदस्त अभ्यास था। उनकी लयकारी, बन्दिश पर नहीं, उपज पर निर्भर थी। पच्चीस-तीस बरस अट्ठारह-अट्ठारह, बीस-बीस घण्टे रोज़ाना के अभ्यास ने रागों, लय और तालों को उनके आत्मविश्वास का अंग बना दिया था। उनकी लयकारी बहुत क्लिष्ट और पेचीदा थी। न केवल ताल की हर मात्रा पर आघात करते चलते थे बल्कि आड़ा चौताल जैसी बेडी ताल में भी आड़-कुआड़ का काम दिखाते थे। धीमे

तिताले, तिताल, जलद, एक ताल और द्रुत आड़ा चौताल में भी वे सामान्य और सहज ही रहते थे। कही से भी मुखड़ा पकड़कर सम पर आ जाना खेल था।

खाँ साहब के अन्दर लय विचलित रहती थी। ताल के दायरे एक-दूसरे को काटते हुए, नाचते हुए, लय के समुद्र मे विलीन हो जाते थे। उनका इरादा पक्का और सच्चा होता था। तानो का गुम्फन बहुत विलक्षण होता था। उनकी तानें रेशम के लच्छे के समान होती थी, जो गोलों मे खुलती-लिपटती रहती थीं। मीड और सूत युक्त गायकी थी। उनकी उड़ानें ऊँची और बहुत तेज होती थीं। नाना प्रकार की तानों के गुम्फन में न जाने कहाँ से वे बहुत ही तंग जगह से पूरा मुखड़ा पकड़कर अचानक सम पर आकर चमत्कृत कर देते थे। तबले की चिन्ता उन्हे कभी नही रही। लय पर उनका अधिकार इतना था कि उन्हें बेताला होने का भय कभी नही रहा। तबले को न उन्होंने ठेके पर बस करने के लिए बाध्य किया, न लढन्त पर उकसाया। उनका गायन तबले के आवर्तनों पर आश्रित न था। उनकी तानें अपने विशिष्ट आवर्तनों मे घूमती और जहाँ से इरादा बनता वे सम पर आ जाते। दरअसल उनके जहान मे ख़याल की संरचना और रूप रहता था जिसके अनुसार वे तानो और अलंकारों की उपज को सामने लाते। उनकी लय कभी ताल के समानान्तर चलती, कभी आडी हो जाती और कभी विपरीत गति मे दौड़ती और सम असम और अनागत के चमत्कार दिखाती। कभी उनके स्वरो और तानो का आघात ताल की हर मात्रा पर होता तो कभी जर्बें लय के विचित्र खण्ड बनाती। ताल से प्रेमालाप और लड़न्त, लय से मेल और तनाव—हर तरह वे श्रोता के दिल को अपनी मुट्ठी मे बन्द रखते।

उनके जितने गाने आज उपलब्ध है उनमे उनका स्वर काली दो है। उनकी आवाज अपने स्वाभाविक गुणो को छोड़े बिना, परिश्रम, अभ्यास और रियाज़ की चुगली खाती है। अति मन्द्र से अतितार तक उसका खिंचना और सिकुड़ना एक सुनिश्चित और सुन्दर अनुपात ही में होता है। अस्सी वर्ष की उम्र मे भी वे मन्द्र षड्ज के अतितार पंचम पर पहुँचते और विश्राम करते हैं। सुना है, जवानी में वे अतिमन्द्र के मध्यम से अतितार के धैवत तक पहुँचते थे। महाराज बिशन कौल ने ठीक ही कहा है कि उनकी आवाज की पहुँच बहुत विस्तृत थी और वे कला से ऊपर जाते थे, न कि आवाज फाड़कर। वे खुली आवाज से गाते थे लेकिन माधुर्य और सौन्दर्य का तकाजा पूरा करने के लिए आवाज को मोटी, मँझोली और बारीक बनाने मे उन्हें झिझक नही होती थी।

उनकी तानों में लम्बी साँस और छोटी साँस दोनो का आभास होता है। स्वर और दाना उनकी तानो से अन्तिम समय तक नही गया। मेरुखण्ड के अलंकारों के विभिन्न टुकड़ों के विलक्षण संयोग से वे नयी तानें बनाते। जमजमा, तहरीर (गिटकिरी) और सट्टे के नाना प्रयोग दिखाते। बोलतान लय खण्डों के अनुसार

गमक के साथ लेते और बहुत तैयारी में बोल बाँट का काम करते। राग के स्वभाव के अनुकूल होता तो तैयार सपाट तानें भी लेते। गमक और फिरत को कभी सिल-सिलेवार, कभी एक साथ बरतते। छूट की तानों की झड़ी लगा देते। कहा करते थे :

"बेटा मेरे गले में एक लाख तानों का गोला घूमता है।"

उनके गायन में स्वर सौष्ठव, रागदारी तिरोभाव कई रागों की छायाओं का प्रदर्शन, लय के साथ रंगरेलियाँ और अखाड़ेबाजी, सुन्दरता, सरसता, मधुरता और पौरुष, आक्रोश, तैयारी और सम्बल परिलक्षित होता है। एकताल और तीनताल की अतिद्रुत लय में बन्दिश को न छोड़ते और पूरे विश्वास के साथ गाते। स्वर और लय के तनाव, सन्तुलन, मिलाप, और लढन्त की इतनी सूक्ष्म और पेचीदा गायकी और कही मुश्किल ही से मिलेगी। उनके गाने में कही टप्पा अंग प्रमुख रहता तो कही तन्त अंग। टप्पा अंग क़व्वाल बच्चों की परम्परा में और तन्त अंग बीनकारी के कारण उनमें प्रविष्ट हो गया होगा। यही कारण था कि सारंगी और तबला उन्हें चिन्तित न कर सके और स्वर लय को निश्चित होकर पूरे आत्मविश्वास की सहजता के साथ भयंकर तैयारी मे भी उन्होंने बरता। स्वर और लय पर उनका अधिकार मरते दम तक क़ायम रहा। वे नायक न हों तो न सही, संगीत के सृजक ज़रूर थे।

खाँ साहब को सैकड़ों बार नोमतोम करते सुना। ध्रुपद का आलाप भी वे घण्टों करते थे लेकिन मैंने आलाप और नोमतोम महफ़िल मे कभी नही सुना। रियाज में ही सुना।

वे भैरवी, खमाज, पीलू आदि में ठुमरी भी गाते थे। मैं एक अदीक्षित और अनाड़ी श्रोता की हैसियत से उनकी ठुमरी गायकी पर आपत्ति कर देता तो हँस पड़ते थे। मुझे उनकी ठुमरी में ख़याल का अनुशासन नजर आता। उनका स्वर सौष्ठव और उनकी तानें ख़याल ही की होतीं। स्वर के अधीन शब्दों का बिगड़ जाना भी स्वाभाविक था। उनकी ठुमरी गायकी मे वह मज़ेदारी, वह शोख़ी और वह चुलबुलापन जो बनारस या पंजाब की ठुमरी में आकर्षित करता है, बहुत कम होता और ठुमरी और ख़याल में अन्तर बहुत अल्प रह जाता। ठुमरी के बजाय उनके भजन अधिक प्रभाव डालनेवाले, करुण तथा भक्ति रस में डूबे हुए होते। लेकिन उनका सितार, बीन और विशेषतः उनके ख़याल और तराने जिन लोगों ने सुने हैं वे उनकी विलक्षण प्रभावशाली प्रतिभा की आज तक सौगन्ध खाते है।

इसमें सन्देह नही कि रागों के प्रति रजब अली खाँ साहब की प्रवृत्ति रोमानी होती थी। किन्तु स्वर की सच्चाई, लय पर उनका प्रभुत्व, तानों में दाने और स्वर का इरादे के अनुरूप कायम रहना और ख़याल का रूप-मण्डन अभिजात और शास्त्रीय ही रहता था। मीड, सूत, छूट, गिटकिरी, जमजमा, गमक आदि के प्रयोगों के कारण उनका गायक रोमानी और आभिजात्य क्षेत्रों की सीमान्त रेखा

पर खेलता था और यह खेल बहुत ख़तरनाक होता था। ख़ाँ साहब तो जैसे रस्सी पर नृत्य करने के शौकीन थे। अनुशासनप्रियता और विद्रोही स्वभाव का द्वन्द्व उनकी कला में स्पष्ट दिखायी देता है किन्तु कलाकार का अनुशासन और संयम विद्रोही के आक्रोश और उत्तेजना पर क़ाबू पा ही लेता है। उन्हें कला के क्षेत्र का हठयोगी कहना उचित होगा।

अपनी कला शैली में व्यक्तिगत विशिष्टता और विलक्षणता कायम रखने का उन्हें बहुत शौक था। शौक के बजाय जुनून कहना चाहिए।

जब कोई कहता कि ख़ाँ साहब इस बुढ़ापे में जब आपकी तैयारी और उपज का यह हाल है तो जवानी मे क्या रहा होगा तो ख़ाँ साहब चिढ़ जाते और कहते तुम लोग पागल हो। जवानी की उम्र गाने की नहीं रियाज़ और उठापटक की उम्र है। बामण की विद्या और गवैये का फ़न (कला) बुढ़ापे मे आजमाने की चीज़ है। उम्रभर ख़ाक छानी तो अब अस्सी के बाद 'सा' लगाने की तमीज़ पैदा हुई है।

जितनी उम्र ख़ाँ साहब के गाने-बजाने की है उतनी उम्र तो आमतौर से लोगों को मिलती भी नहीं। चार वर्ष की उम्र से तो सीखना शुरू कर दिया था। बीस वर्ष की उम्र में दरबारों में गाना-बजाना शुरू हो गया था। सिर्फ दरबारों और कान्फ्रेंसों में ही 65 वर्ष गाये-बजाये।

ख़ाँ साहब का पार्थिव शरीर देवास की टेकरी पर शीलनाथ महाराज की धूनी और ख़ाँ साहब के वालिद उस्ताद मुगल ख़ाँ साहब के मजार के पास ही मिट्टी के सुपुर्द कर दिया गया। उनकी आवाज उनके रसिकों की आत्मा में गूँज रही है या एल्यूमीनियम के तवों और लोहचूर्णयुक्त फीतों पर सुरक्षित है। यह आवाज़ हमारी संगीत संस्कृति के एक ऐतिहासिक युग की आवाज़ है और हमारी राष्ट्रीय धरोहर है।

परिशिष्ट-1

उस्ताद रजब अली खाँ का वंशवृक्ष
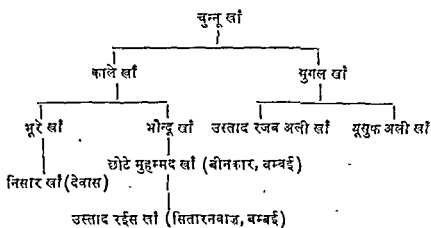
परिशिष्ट–2

उस्ताद रजब अली खाँ का जीवनवृत्त

3-9-1874	नरसिंहगढ़ में जन्म
1884	परिवार नरसिंहगढ़ से देवास में आ बसा
1890	उस्ताद बन्दे अली खाँ ने देवास मे गण्डा बाँधा
1891	उस्ताद के साथ पुणे को प्रस्थान
1892	कोल्हापुर में पिता, मुगल खाँ का आना
1895	उस्ताद बन्दे अली खाँ का पुणे मे देहान्त
1897	कोल्हापुर में हैदरबख्श और पिताजी के बुलाने पर पहुँचना
1898	जावरा में सायरा बाई से विवाह
1899	भ्रमण (भारत के विभिन्न राज्यों और नेपाल की यात्रा)
1908	मल्हार राव बाबा साहेब पवार देवास ले आये
1909	कृष्णदेवराय वाडियार द्वारा मैसूर में संगीत रत्नभूषण की उपाधि
1931	बाम्बे म्यूज़िकल आर्ट सोसायटी द्वारा संगीत सम्राट घोषित
1935	म्यूज़िक कान्फ्रेंस, लखनऊ
1936	म्यूज़िक कान्फ्रेंस, इलाहाबाद
1937	म्यूज़िक कान्फ्रेंस, कलकत्ता
1937	बड़े गुलाम अली खाँ द्वारा एक हज़ार रुपये की नज्र। उस्ताद अब्दुल करीम खाँ का देहान्त
1940	म्यूज़िक कान्फ्रेंस, झांसी
1942	म्यूज़िक कान्फ्रेंस, इलाहाबाद
1945	म्यूज़िक कान्फ्रेंस, लखनऊ
1946	उस्ताद अल्लादिया खाँ का देहान्त
1948	अमानत खाँ का देहान्त

1949 उस्ताद बेहरे वहीद खाँ का देहान्त
1950 उस्ताद फैयाज़ खाँ का देहान्त
1954 संगीत नाटक अकादेमी पुरस्कार
1955 स्वामी हरिदास संगीत सम्मेलन, बम्बई
लता मंगेशकर द्वारा सत्कार—पक्का सेला और एक हज़ार रुपये नज्र
1958 सुरसिंगार संसद बम्बई द्वारा सम्मान
8-1-1959 देहान्त—देवास में

सन्दर्भ

हिन्दी

आगरा घराना : ले. रमणलाल मेहता
उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास : ले. वि. ना. भातखण्डे
मुसलमान और भारतीय संगीत : ले. आचार्य बृहस्पति
खुसरो, तानसेन और अन्य कलाकार : ले. सुलोचना यजुर्वेदी और आचार्य बृहस्पति
संगीतज्ञों के संस्मरण : ले. विलायत हुसेन खाँ
हमारे संगीत रत्न : प्रकाशक, संगीत कार्यालय, हाथरस
मध्यप्रदेश के संगीतज्ञ : ले. प्यारे लाल श्रीमाल
भारतीय संगीत कोष : ले. विमलाकान्त रायचौधुरी
संगीत बोध : ले. शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे
संगीत के घरानों की चर्चा : ले. सुशील कुमार चौबे

मराठी

थोर संगीतकार : ले. प्रो. बी. आर. देवधर
अल्लादिया खाँ याचे चरित्र : ले. गोविन्द राव टेंबे

उर्दू

मअदनुल मूसीकी : ले. मु हरमहमान
मआरिफन्नुगमात : ले. राजा नवाब अली
खुसरो शिनासी : सं. ज़ोय अन्सारी
हज़रत अमीर खुसरो का इल्मे मूसीकी : ले. रशीद मलिक

अंग्रेजी

Traditions and Trends in Indian Music by V. K. Agrawal
A History of Indian Music by Swami Prajnananda
Abdul Karim : The man of The times by Jayanti Lal Jariwala
Kitab-i-Nauras : Edited by Prof. Nazir Ahmed
Amir Khusrau : An anthology Edited by Aftab Ahmed

पत्रिकाएँ

संगीत (हाथरस), संगीत कला विहार (बम्बई), उर्दू आजकल—मूसीकी नम्बर (दिल्ली), नयी दुनिया (इन्दौर), महाराष्ट्र टाइम्स (बम्बई), मध्यभारत सन्देश (ग्वालियर)

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
53			बहादुरी तोडी सा - नि नि धमप प मं ग रे सा जौनपुरी पध नि सा रामदासी मल्हार ध नि प, सा नि ध नि प नि ध ध, नि, सा, नि निऽऽ निसा रे सा
62	8	ठेका व गाना	ठेका लगाना
	9	शान्ति मे	शान्ति से
62	10	जब वे सुर मे, लय मे,	जब वे सुर मे
'62	25	टेकरी, मल्ल	टेकरी, महल
66	27	पटठे	पट्ट
67	3	गजी बाई	गबी बाई
	14	लीला भटकर	लीला मटकर
69	1	3 जनवरी 1968	3 जनवरी 1948
	2	चालीस वर्ष	अडतालीस वर्ष
	13	पटु शिष्यो	पट्ट शिष्यो

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पैरा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
17	3	2	नभस्य	नभस्य
17	3	13	चतुष्पदादयो	चतुष्पादद्यो
25	1	8	शार्कियों	शर्क़ियों
31	—	9	गुलाम तका खां	गुलाम तक़ी खां
31	2	4	बन्देगाने आली	बन्दगाने आली
31	4	1	महाराज शिवाजी	महाराजा शिवाजीराव
			होल्कर	होल्कर
33	2	3	घुआ	घुआ
34	1	2	नायाब दीवान	नायब दीवान
39	2	2	स्व. कृ. गं कव्वाले	स्व. कृ. गं कवचाले
39	2	उद्धरण पं. 20	रामपुरी ताशबीन	रामपुरी ताशाबीन
45	1	राग 15	झांझ मल्हार	झोझ मल्हार
49	3	2	योऽयं	योऽसौ
49	3	3	कथितो	कथ्यते
69	4	1	पटुशिष्यों	पट्टशिष्यों
78	उर्दू	1	ले. मु. हरमहमान.	ले. मु. करम इमाम